परम पूज्य आचार्य श्री उमास्वामी विरचित
'तत्त्वार्थसूत्र' के दूसरे अध्याय पर
विशेष प्रवचन

जीव-विज्ञान

प्रवचनकर्ता :
मुनि प्रणम्यसागर

कृति :
जीव-विज्ञान

आशीर्वाद :
आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

प्रवचनकर्ता :
मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज

संयोजन :
डॉ. श्रीचन्द्र जैन, रेवाड़ी
अजितप्रसाद जैन, रेवाड़ी

शब्द संयोजन :
श्रीमती नेहा जैन (ध.प. श्री अमित जैन), रेवाड़ी

आवृति : **1100**

मूल्य : **50/-**

पुण्यार्जक :
1. श्रीमती रविकान्ता जैन, विश्वास नगर, देहली
2. श्री विनोदकुमार जैन, ऋषभ प्लाईवुड, रोहतक

प्राप्ति स्थान :

शैलेन्द्र शाह, उज्जैन - 09425092483, 09406881001

आर्हत विद्या प्रकाशन, गोटेगांव - 09425837476
अजित प्रसाद जैन, जैन कम्प्यूटर्स, 112-एल, मॉडल टाउन, रेवाड़ी - 9896437271

प्रकाशक :
आचार्य अकलंक देव विद्या शोधालय समिति
109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्धैन
फोन : 2519071, 2518396
E-mail : sss.crop@yahoo.com
मुद्रक
अजय प्रैस, काठ मण्डी, रेवाड़ी-123401
(हरियाणा) - 9416150911

'तत्त्वार्थसूत्र' का द्वितीय अध्याय
आद्य-निवेदन

डॉ०श्र ीचन्द्रज ैन,र `वाड़ी
रिटायर्ड प्रिंसिपल

'तत्त्वार्थसूत्र' जैन वाङ्मय का सर्वाधिक लोकप्रिय व कीर्तिमान ग्रन्थ है जिसके दस अध्यायों में सात तत्त्वों की सूत्रात्मक रूप में सारगर्भित व मार्मिक सृजनशीलता है। द्वितीय अध्याय में सृष्टि के समग्र जीवों की निरूपणा विविध रूपों में निबद्ध है। जिसकी सुबोधगम्य विस्तारणा मुनिप्रवर 108 श्री प्रणम्यसागर जी के वैज्ञानिक प्रवचनों में निहित है। इन अमृतमयी प्रवचनों का निम्नांकित रूप में वैशिष्ट्य है –

1. प्रत्येक सूत्र की व्याख्या करते समय मुनिवर प्राचीन घिसे–पिटे उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि/अपितु अधुनातम जीवन के ताजे वातावरण में घटित जीवन्त घटनाओं का ही उल्लेख करते है जिससे सूत्रों का अर्थ व भाव श्रोताओं/पाठकों के हृदयों को संस्पर्श कर सके। इन प्रवचनों की सम्प्रेषणीयता सर्वथा निराली है। इसीलिए जैन–अजैन बन्धुओं के लिए ये प्रेरणादायक प्रवचन अत्यावश्यक रूप से श्रोतव्य, ज्ञातव्य व ध्यातव्य हैं।

2. मुनिश्रेष्ठ ने प्रसंगानुकूल विशिष्ट शब्दों का निर्वचन किया है। जैसे – उपयोग, भाव, त्रसजीव, निगोदिया जीव, प्रासुकजल, आहारक शरीर, निर्वृत्ति, कर्मयोग आदि शब्द सर्वथा मौलिक, नूतन व विशद व्याख्यायित हैं जो अन्यत्र प्राप्य नहीं हैं जिनकी जानकारी धर्म–प्रेमी सहृदयों के लिए परमोपयोगी है।

3. संदर्भानुसार शब्दों के अन्तरंग को अपरोक्ष करते हुए कतिपय शब्दों के पारस्परिक अन्तर को मुनिप्रवर द्वारा सोदाहरण समझाया गया है। भावविज्ञान–मनोविज्ञान, द्रव्येन्द्रिय–भावेन्द्रिय, आहारक–अनाहारक जीव, स्थावर जीव–माँस, भव्य–अभव्य, तेजस–कार्माण शरीर, समनस्क–अमनस्क जीव इत्यादि। इनकी समुचित जानकारी आधुनिक विज्ञान (Science) और जैन–दर्शन के परिप्रेक्ष्य में विज्ञापित की गयी है।

4. सन्तशिरोमणि मुनिवर ने विविध सूत्रों के अन्तःस्थल को खोलते हुए तत्सम्बन्धी शंकाएँ करके उनका सम्यक् समाधान प्रस्तुत किया है। उनकी एवावती प्रवचन–शैली से विषय में दूरदर्शिता, स्वच्छता व गहनता दर्शनीय है। परिणामस्वरूप श्रोता/पाठक की

विषयगत शंकाएँ किंचित् भी अवशेष नहीं रह जाती।

5. मुनिवर ने सूत्रों को प्रवचनात्मक रूप में उजागर करते हुए आधुनिक विज्ञान (Science) की मान्यता को उनके समक्ष रखकर दोनों का पारस्परिक मूल्यांकन भी यत्र–तत्र किया है। उदाहरण के लिए–आलोच्य अध्याय (13वें सूत्र) में एकेन्द्रिय जीव पंचविध अंकित है। (1) पृथ्वीकायिक, (2) जलकायिक, (3) अग्निकायिक, (4) वायुकायिक, (5) वनस्पतिकायिक। आज विज्ञान (Science) ने वनस्पति व जल को सप्राण (जीव) स्वीकार कर लिया है। विज्ञ मुनिराज ने एतद्विषयक प्रवचन में कहा है – पृथ्वीकायिक आदि भी जीव है यह विज्ञान (Science) आज तक सिद्ध नहीं कर पाया है।

   अतः कहा जा सकता है कि जैन–विज्ञान के समक्ष आधुनिक विज्ञान बौना पड़ गया है। इस प्रकार के विविध प्रसंग मुनिवर के प्रवचनों में द्रष्टव्य और ज्ञातव्य हैं।

6. द्वितीय अध्याय का श्रीगणेश जीव के भावों की विवेचना से होता है जिसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्ररूपणा को मुनिश्री ने सुबोधगम्य बनाया है। वस्तुतः जिनेन्द्र भगवान के केवलज्ञान में प्रत्येक जीव की त्रिकालवर्ती पर्यायें व उनके समग्र भाव दर्पणवत् झलकते हैं। उसी दिव्य ज्ञान के अनुसार 'तत्त्वार्थसूत्र' में जीव के पंचविध भावों तथा उनके 53 भेद–प्रभेदों को समझाते हुए मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने सोदाहरण सिद्ध किया है कि जीव के कर्म उनके सद्–असद् भावों की आधारशिला पर जन्म लेते हैं। जिनके अनुसार जीवों को शुभ–अशुभ फल भोगना पड़ता है। इसी संदर्भ में मुनिवर ने उद्घोषणा की है–'जीव का जो भीतरी विज्ञान (भाव) है वह कर्मों के साथ सम्बन्ध रखते हुए किस प्रकार से चलता है–यह हमें जैनदर्शन ही पढ़कर समझ में आयेगा' अन्यत्र उसका ज्ञान अपेक्षित नहीं है।

7. अलोच्य अध्याय को मुनिश्री ने 'जीवविज्ञान' संज्ञापित किया है जो सर्वथा सार्थक व औचित्यपूर्ण है। क्योंकि इस अध्याय में जीव का लक्षण, जीव के प्रकार, उनका उद्भव, पुर्नभव से पूर्वगमन (गति), पुर्नजन्म के गर्भ व जन्म के भेद, शरीर के प्रकार, विविध योनियाँ, लिंग विधान, निवास, आयु आदि गहन–चिन्तात्मक विवेचित है। जिससे ज्ञात हो जाता है कि आज के जन्तु–विज्ञान (Zoology), जीव विज्ञान (Biology) शारीरिक विज्ञान (Physical science) की उपलब्धियों से 'तत्त्वार्थसूत्र' के कदम बहुत अग्रेसरित है। मेरी दृष्टि में 'तत्त्वार्थसूत्र' आगम जैन धर्म का इन्साइक्लोपीडिया (Encyclopaedia) है। मुनिराज श्री प्रणम्यसागर जी की अवधारणा है – 'जैनधर्म को समझने के लिए यह 'तत्त्वार्थसूत्र' एक कुंजी है।

अथ द्वितीयोऽध्याय:

जीव-तत्त्व का वर्णन

द्वितीय अध्याय में जीवों के भावों के विषय में और जीव में किस तरह से उन भावों में परिवर्तन होते हुए उनका जन्म इत्यादि होता है, बताया गया है। दूसरे अध्याय में प्रारम्भ के कुछ सूत्रों में भावों का वर्णन है। उसके बाद जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान का वर्णन है। हम जो जूलोजी और बायोलोजी पढ़ते हैं उसका अध्ययन जैनदर्शन के तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय के माध्यम से करेंगे। तत्त्वार्थसूत्र जैनदर्शन का एक महनीय ग्रन्थ है। जैसे सभी दर्शनों की कोई न कोई एक कुंजी होती है उसी प्रकार से जैनदर्शन को समझने के लिए यह तत्त्वार्थ सूत्र एक कुंजी है। इसमें आये हुए सूत्रों को समझने का प्रयास करेंगे तो हम जैनदर्शन की गहराइयों को समझ सकेंगे।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व–मौदयिक–पारिणामिकौ च।। 1।।

अर्थ–जीव के अपने निज के पाँच असाधारण भाव हैं। जो 1. औपशमिक, 2. क्षायिक, 3. मिश्र अथवा क्षायोपशमिक, 4. औदयिक, 5. पारिणामिक भाव हैं।

इस सूत्र में जीवों के भावों का वर्णन किया जा रहा है। आप सुनते रहते होंगे–आपके कैसे भाव हैं–आपके कैसे भाव हैं?आप किसी के भावों को कैसे पहचान पाएंगे जब तक आपको जिनवाणी के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है?संसार में सामान्यतः उन भावों को दो भागों में विभाजित कर देते हैं। 1. Positive Emotions –सकारात्मक भाव 2. Negative emotions –नकारात्मक भाव। इन्हीं में यह समस्त संसार चल रहा है। लेकिन जो भीतरी विज्ञान है या जो जीव का विज्ञान है, वह कर्मों के साथ सम्बन्ध रखते हुए किस प्रकार से चलता है, –यह हमें जैनदर्शन पढ़कर ही समझ आएगा। आचार्य कहते हैं 'जीवस्य स्वतत्त्वम्' जीव का स्वतत्त्व, तत्त्व अर्थात् जीव के अपने जो भाव हैं। जीव के अपने भावों को यहाँ जीव का 'स्वतत्त्व' कहा गया है। ये जो भाव हैं वे जीव के एक प्रकार के नहीं है बल्कि पाँच हैं। इसीलिए आचार्य पाँच प्रकार के भावों का वर्णन करने जा रहे हैं।

सबसे पहला है औपशमिक भाव, दूसरा है क्षायिक भाव, तीसरा है मिश्र भाव, चौथा है औदयिक भाव और पाँचवाँ है पारिणामिक भाव। जीव के ये पाँच प्रकार के भाव हैं। ये भाव ही उसके स्वतत्व हैं अर्थात् ये भाव जीव में उत्पन्न हो रहे हैं। इसलिए इनको जीव का ही स्वतत्त्व कहा गया है। ये परतत्त्व नहीं हैं बल्कि ये स्वतत्त्व हैं। स्व का अर्थ है, जीव के अलावा ये भाव कोई और कर नहीं सकेगा। अर्थात् जीव के अतिरिक्त ये भाव किसी अन्य में उत्पन्न भी नहीं होंगे इसलिए यहाँ पर **'जीवस्य स्वतत्त्वं'** यह कहा गया है।

शंका– यहाँ पर औपशमिक भाव को ही पहले क्यों रखा गया है ?

समाधान—औपशमिक भाव यहाँ सबसे पहले कहने के कई कारण हैं।

पहला कारण यह है कि जीव को जब भी कभी मोक्षमार्ग की उपलब्धि होती है अथवा मोक्षमार्ग के उपयोगी किसी भी भाव की आवश्यकता होती है तो उसमें सबसे पहले जो भाव आयेगा, वह औपशमिक भाव ही होगा। अर्थात् संसार मार्ग में जो जीव चले रहे हैं उनके भाव जब भी बदलेंगे और कोई नया भाव जब भी उत्पन्न होगा वह औपशमिक भाव ही होगा। औपशमिक भाव ही क्यों होगा?इसकी जानकारी भी आगे के सूत्र में दी जाएगी। यहाँ कहा गया है—सबसे पहले मोक्षमार्ग में जो भाव होगा वह औपशमिक भाव ही होगा और यह औपशमिक भाव भी यदि होता है तो सम्यग्दर्शन के साथ होता है। इसको कहते हैं—औपशमिक सम्यग्दर्शन का भाव। अनादिकाल से जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं उनको जब भी कभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी तो सबसे पहले इसी औपशमिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी। उससे उत्पन्न होने वाला जो भाव होगा वह औपशमिक भाव ही होगा। इसलिए यहाँ सबसे पहले औपशमिक भाव को लिखा है।

दूसरा कारण यह है कि औपशमिक भाव वाले जीवों की संख्या सबसे कम होती है। तीन लोक की चारों गतियों में यह औपशमिक भाव किसी भी जीव को हो सकता है, लेकिन ये जीव बहुत कम होते हैं। इसलिए भी औपशमिक भाव को सबसे पहले लिखा है।

दूसरे नम्बर पर आचार्य कहते हैं—क्षायिक भाव। औपशमिक के बाद क्षायिक भाव लिखा हुआ है और इन दोनों भावों को एक साथ जोड़ा भी गया है। आपने संस्कृत पढ़ी होगी तो इसे कहते हैं द्वन्द्वसमास पद। —औपशमिक और क्षायिक इन दोनों को जोड़ करके लिखा गया है, इनका गठबंधन करके लिखा है जबकि अन्य सभी भावों को अलग—अलग लिखा है। इसका भी एक कारण यह है क्योंकि औपशमिक भाव और क्षायिक भाव—इन दोनों में समानताएं हैं। जैसी विशुद्धि हमें औपशमिक भाव से प्राप्त होती है वैसी ही विशुद्धि हमें क्षायिक भाव से भी प्राप्त होती है। औपशमिक भाव वाले जीवों की संख्या से क्षायिक भाव वाले जीवों की संख्या भले ही अधिक होती है।

यह कथन हमें यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से समझना चाहिए। औपशमिक—सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा क्षायिक—सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात—गुणे अधिक होते हैं। यह एक गणित है अनन्त— गुणे नहीं, संख्यात—गुणे नहीं, असंख्यात—गुणे अधिक होते हैं। क्षायिक भाव वाले जीव औपशमिक भाव वाले जीवों से असंख्यात गुणे होते हैं और इन दोनों सम्यग्दर्शन की विशुद्धि समान होती है। इसलिए भी इनका गठबंधन हो जाता है। अतएव इन दोनों भावों को आचार्य महाराज ने यहाँ पर पहले लिखा है।

शंका— क्या काल की अपेक्षा से इन भावों को एक साथ लिखा है?

समाधान— काल की अपेक्षा से इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि आगे जो क्षायोपशमिक भाव आएगा उसका काल उससे भी अधिक है। अतः जो कारण यहाँ दिये गये है केवल उन्हीं कारणों को समझना।

तत्पश्चात् जो भाव आता है वह है–**मिश्र**। इन मिश्र भावों को क्षयोपशम भावों के रूप में कहा जाता है। यहाँ आचार्य ने क्षयोपशम न लिखकर 'मिश्र' लिखा है। क्षायोपशमिक भाव में दो चीजें जुड़ी हुई हैं–क्षय और उपशम। इन दोनों का वर्णन पहले हो चुका है। जिसमें क्षय हो और उपशम हो उसे कहेंगे–क्षयोपशम। इसीलिए 'मिश्रः' जो शब्द यहाँ पर आया है वह क्षयोपशम भाव को बताने के लिए आया है और क्षयोपशम भाव को मध्य में रखा गया हैं। आगे भी दो भाव हैं, पहले भी दो भाव आ चुके हैं। क्यों रखा है?क्योंकि यह क्षयोपशम–भाव सभी जीवों में सभी भावों के साथ रह जाता है। इन पाँच भावों में से यह क्षयोपशम भाव सभी जीवों में मिल जाएगा। अर्थात् भव्य जीवों में भी मिल जाएगा, अभव्य जीवों में भी मिल जाएगा, मिथ्यादृष्टि जीवों में भी मिल जाएगा और सम्यग्दृष्टि जीवों में भी मिल जाएगा। इस कारण से मिश्र–भाव को यहाँ पर मध्य में रखा गया है और यह मिश्र–भाव सभी जीवों में रहता है इसलिए अनेक प्रकार के जो मिश्रभाव आगे बताए जाएंगे उनसे आपको ज्ञात होगा, कि क्षयोपशम–भाव के कितने भेद हैं?यहाँ पर अभी हमें केवल इतना समझना है कि औपशमिक–भाव से क्षायिक–भाव वाले जीव असंख्यात गुणे हैं और क्षायिक–भाव वाले जीवों से भी असंख्यात गुणे जीव क्षयोपशम–भाव वाले हैं। लेकिन जो भाव हैं वह सम्यग्दर्शन सम्बन्धी जानना अन्य ज्ञानादि सम्बन्धी भावों को यहाँ पर नहीं लगाना है। क्षयोपशम–सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक–सम्यग्दृष्टि जीवों से भी अधिक होते हैं। इस अपेक्षा से भी हम इसको इस क्रम के अनुसार समझ सकते हैं।

इसके बाद आता है **औदयिक भाव**। औदयिक और पारिणामिक इन दोनों भावों का भी आपस में गठबंधन है। 'औदयिक–पारिणामिकौ'–इन दोनों को मिलाकर एक पद बनाया है। औदयिक–भाव वाले जीव और पारिणामिक–भाव वाले जीव भी आपको हमेशा मिलेंगे और जीव में औदयिक और पारिणामिक भाव नियम से मिलेंगे। इन भाव वाले जीवों की संख्या अनन्त होती है। ये औदयिक और पारिणामिक भाव सम्यग्दर्शन से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। ये भाव सामान्य जीवों में पाये जाते हैं। भव्य, अभव्य सभी जीवों में ये औदयिक और पारिणामिक भाव मिलेंगे। इन भावों वाले जीव अनन्त संख्या में होते हैं इसलिए इन भावों को सबसे अन्त में लिखा गया है। इस तरह से इन पाँचों भावों का वर्णन यहाँ पर किया गया है।

हमें जानना चाहिए कि संसारी जीवों में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?संसारी जीवों में भी जो मिथ्यादृष्टि हैं उनमें कौन से भाव होंगे और जो सम्यग्दृष्टि जीव हैं उनमें कौन से भाव होंगे?मुक्त जीवों की चर्चा आगे की जाएगी।

हमें यह समझना है कि संसारी जीवों में जो जीव अभी मोक्षमार्ग पर नहीं लगे हैं, जिन जीवों में मोक्षमार्ग का श्रद्धान नहीं हुआ है, जिनको सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति नहीं हुई है उन जीवों में न तो औपशमिक–भाव होगा न क्षायिक–भाव होगा। उनमें मिश्र भाव होगा, लेकिन वह ज्ञान से सम्बन्धित होगा और दूसरे कर्मों से सम्बन्धित होगा लेकिन सम्यग्दर्शन से सम्बन्धित नहीं होगा। औदयिक और पारिणामिक भाव तो नियम से होंगे ही। कहने का तात्पर्य है कि औदयिक,

पारिणामिक और मिश्र ये तीन भाव तो प्रत्येक संसारी प्राणी में होते ही हैं। इन तीन भावों के साथ प्रत्येक प्राणी जीवित है और जीवित रहता है। संसार का कोई भी प्राणी हो उस प्राणी में तीन भाव तो रहेंगे ही, कोई भी जीव इन भावों से रहित नहीं होता है। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय निगोद के जीव में भी ये भाव पाए जाएंगे। अब ये भाव कैसे होते हैं?कौन–कौन से होते हैं?इसके बारे में आचार्य स्वयं बता रहे हैं। उससे पूर्व इन भावों की परिभाषा हमें समझ लेनी चाहिए।

शंका – औपशमिक भाव क्यों उत्पन्न होता है?

समाधान–जब आत्मा में कर्मों का उपशमन होता है तो उससे आत्मा में जो भाव उत्पन्न होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। कर्मों के उपशमन से आत्मा में औपशमिक भाव उत्पन्न होते हैं।

औपशमिक का अर्थ– कर्मों का आत्मा में उपशम हो जाना, उपशमन का अर्थ है–दब जाना। कर्म उदय में है तो वह कहलाएगा औदयिक भाव और उन कर्मों को अगर हमने किसी कारण से दबा दिया तो वह कहलाएगा औपशमिक भाव।

एक उदाहरण के माध्यम से हम इसे समझ सकते हैं– एक बर्तन है उसमें गंदा पानी भरा हुआ है। आपने उसमें फिटकरी डाल दी तो उस बर्तन की जो गंदगी थी वह तल में बैठ जाएगी और अब जो साफ पानी है वह ऊपर दिखाई देगा। यह हो गया औपशमिक भाव यानि कि आत्मा में भी जब ऐसे कर्म दब जाते हैं और आत्मा के परिणामों में निर्मलता आ जाती है तो इसे औपशमिक भाव कहेंगे। उस स्वच्छ जल की तरह जब हमारे भाव भी स्वच्छ और निर्मल हो जाएंगे तो इसे औपशमिक–भाव कहेंगे। अब उसी पानी को बहुत सावधानी के साथ किसी दूसरे बर्तन में छान लें जिससे कि उसकी जो मिट्‌टी है वह सर्वथा अलग हो जाए और वह स्वच्छ पानी दूसरे बर्तन में आ जाए तो वह स्वच्छ पानी हो गया क्षायिक–भाव। अब हम उस पानी को कितना भी हिलाएँ–डुलाएँ उसमें कोई भी गंदापन नहीं आएगा। इसी तरह से जब आत्मा में क्षायिक–भाव उत्पन्न होता है तो अनन्तकाल तक उसी प्रकार का भाव बना रहता है। जितने भी केवलज्ञानादिक हैं वह सब क्षायिक भाव ही हैं। उस पहले वाले बर्तन को हमने थोड़ा सा हिला दिया तो हल्का–सा हिलने के कारण उस बर्तन के पानी में थोड़ा सा गंदलापन आ जाता है। मिट्‌टी बैठी भी है लेकिन उस पानी में थोड़ा सा गंदलापन आ गया। कहने का तात्पर्य है उस पानी में थोड़ा सा गंदलापन भी है और थोड़ा सी स्वच्छता भी है। इसको ही मिश्रभाव कहते हैं। ऐसे ही आत्मा में क्षायोपशमिक भाव होते हैं। कुछ गुण आत्मा में प्रकट हो जाते है और कुछ गुण आत्मा में दब जाते हैं, इसे मिश्रभाव कहते हैं। जैसे–आपके अंदर, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान है, तो वह मतिज्ञान आपका कैसा है?कुछ बातें तो समझ आती हैं और कुछ बातें ऊपर से चली जाती है अर्थात् समझ में नहीं आती।

1.औपशमिक–भाव – कर्मों के उपशम से जो भाव उत्पन्न होगा वह औपशमिक भाव कहलाएगा।

2.क्षायिक–भाव – कर्म के क्षय से जो भाव उत्पन्न होगा वह क्षायिक भाव कहलाएगा।

3.मिश्र–भाव – यह दोनों का मिला जुला मिश्र–भाव है। कुछ का उपशम हो गया है या दब गया है, कुछ का क्षय हो गया है इसलिए इसको क्षयोपशम भाव कहते हैं। क्षयोपशम जिसका प्रयोजन बन गया है वह क्षयोपशम भाव कहलाएगा।

4.औदयिक–भाव – कर्म के उदय से जो भाव उत्पन्न होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं। कर्म के जो भाव हैं उनमें हमें कर्म का फल नहीं मिल रहा है। जो औपशमिक भाव हैं इसमें हमने कर्मों को दबा दिया, अथवा क्षायिक–भाव से क्षय कर दिया है उसके बाद में जो आत्मा का परिणाम उत्पन्न हुआ वह हमारी आत्मा का वास्तविक भाव कहलाएगा। औदयिक–भाव में जो हमें भाव आएगा वह कर्म के कारण मिला हुआ भाव होगा, वह आत्मा का भाव नहीं होता।

5.पारिणामिक–भाव – पारिणामिक–भाव एक ऐसा भाव है जो न तो कर्म के उदय से होता है, न कर्मों के उपशम से होता है, न कर्मों के क्षय से होता है और न कर्मों के

जीव के असाधारण भाव

नाम	औपशमिक	क्षायिक	मिश्र (क्षायोपशमिक)	औदयिक	पारिणामिक
भेद	2	9	18	21	3
कर्म संबंधी कार्य	उपशम (दबना)	क्षय (अत्यन्त विनाश)	क्षयोपशम (कुछ उपशम, कुछ क्षय)	उदय (फल)	कर्म निरपेक्ष –
संबंधित कर्म	मोहनीय कर्म	4 घातिया कर्म	4 घातिया कर्म	8 कर्म	–
उदाहरण	जल में मैल का नीचे बैठना	जल का पूर्ण शुद्ध होना	जल में कुछ मैल का दबना एवं कुछ का प्रकट होना	गंदला जल	जल सामान्य
जीवों की संख्या	संख्यात अथवा असंख्यात	अनंत (औपशमिक से अनंतगुणे) 4–14 गुण स्थानवर्ती+ सिद्ध भगवान	अनंत (क्षायिक से अनंतगुणे) 1–12 गुणस्थानवर्ती	अनंत (क्षायोपशमिक से विशेष अधिक) 1–14 गुणस्थानवर्ती	समस्त जीव (औदयिक से विशेष अधिक) 1–14 गुणस्थानवर्ती+ सिद्ध भगवान

क्षयोपशम से होता है। यह कर्म से निर्पेक्ष भाव है इसलिए यह पारिणामिक भाव है। जिस जीव में जैसा रहता है वह उस जीव में अपने ही कारणों से, अपने ही स्वभाव में बना रहता है इसी को उपादान कारण भी कहते हैं। उपादान का अर्थ हैं अपनी आत्मा की शक्ति और अपनी आत्मा की योग्यता। वह आत्मा की योग्यता इस पारिणामिक–भाव पर ही निर्भर करती है।

आचार्य इस सूत्र में भावों के भेद बता रहे हैं–

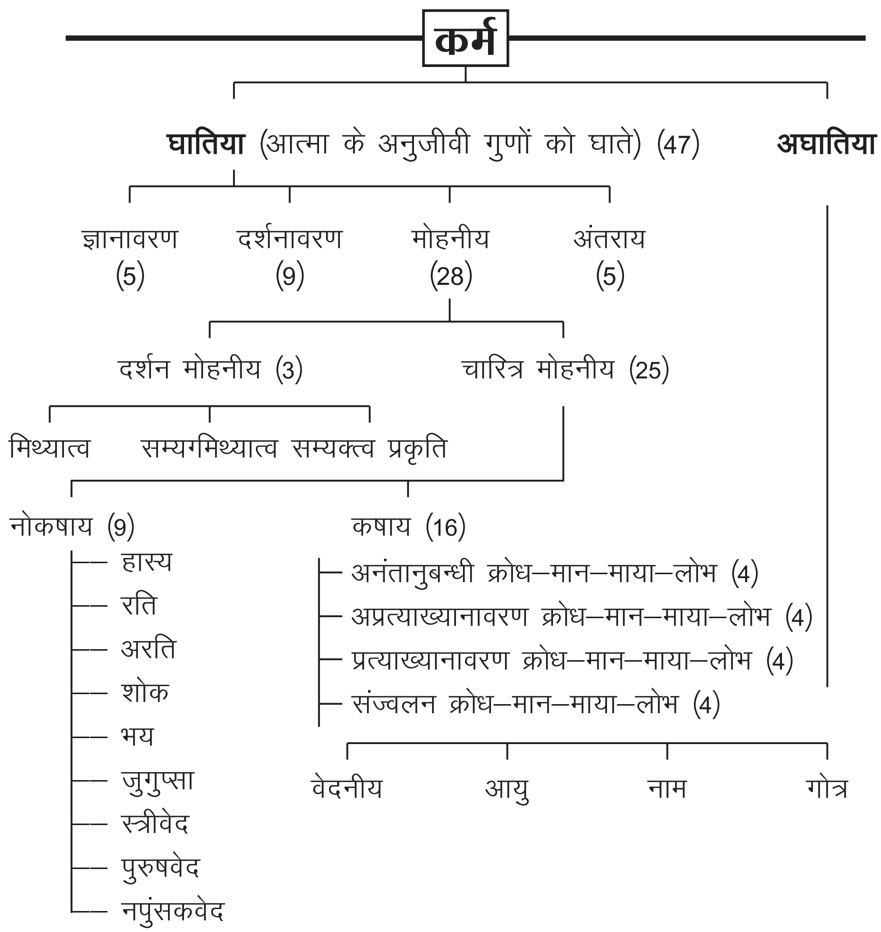

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्।। 2।।

अर्थ–द्विअर्थात दो, नव अर्थात् नौ, अष्टादश अर्थात् अट्ठारह, एकविंशति–इक्कीस, त्रि अर्थात् तीन , यथाक्रमम्–जो भाव जिस क्रम में लिखा हुआ इनको भी उसी क्रम में लगाना।

औपशमिक–भाव के दो भेद हैं। क्षायिक–भाव के नौ भेद है। मिश्र–भाव के अट्ठारह भेद हैं। औदयिक–भाव के इक्कीस भेद हैं और पारिणामिक–भाव के तीन भेद हैं।

आगे के सूत्र में आचार्य औपशमिक के दो भेद कौन–कौन से है? उनका वर्णन करने जा रहे हैं। औपशमिक भाव के दो भेद–

सम्यक्त्वचारित्रे।।३ ।।

अर्थ–औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र–ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं।

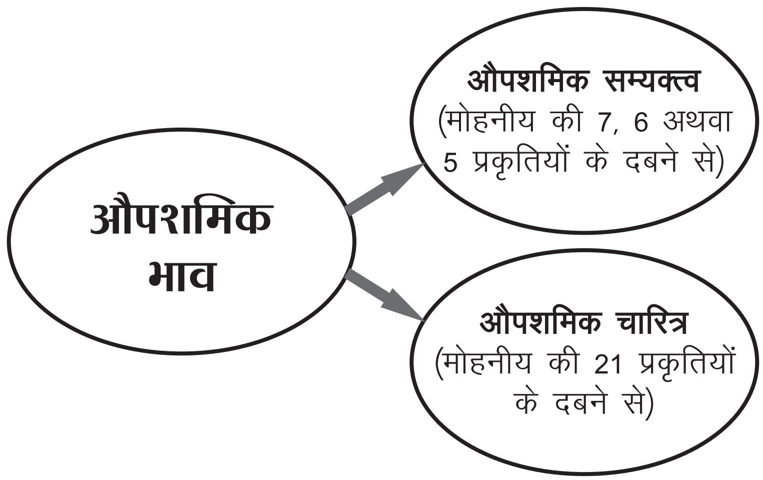

औपशमिक भाव दो प्रकार का है। एक औपशमिक सम्यक्त्व और दूसरा औपशमिक चारित्र। सम्यक्त्व का अर्थ है सम्यग्दर्शन। जो भाव सम्यग्दर्शन के साथ होगा वह कहलाएगा औपशमिक सम्यक्त्व का भाव और जो भाव चारित्र के साथ होगा वह कहलाएगा औपशमिक चारित्र का भाव। हमें इस बात को भलीभांति ज्ञात कर लेना चाहिए कि कुछ ऐसे भी कर्म होते हैं जो सम्यग्दर्शन भी नहीं होने देते और न ही हममें सम्यक्–चारित्र को होने देते हैं। जब हम उन कर्मों को दबाएंगे तो जिन कर्मों के दबने से हममें सम्यग्दर्शन उत्पन्न होगा तो वे सम्यग्दर्शन के विरोधी कर्म कहलाएंगे और जिन कर्मों के दबने से हमारे अंदर चारित्र उत्पन्न होगा, वे चारित्र के विरोधी कर्म कहलाएंगे। उन विरोधी कर्मों के दबने (उपशम करने)से ही औपशमिक सम्यग्दर्शन का भाव उत्पन्न होगा और जो चारित्र को उत्पन्न नहीं होने देते हैं उन कर्मों को जब हम दबाएंगे (उपशम करेंगे) तो हमारे अंदर औपशमिक चारित्र का भाव उत्पन्न होगा। दो ही प्रकार के औपशमिक भाव होंगे एक सम्यग्दर्शन सम्बन्धी और दूसरा सम्यक्चारित्र सम्बन्धी। यहाँ हमें एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि जब भी औपशमिक भाव होगा वह सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र सम्बन्धी ही होगा। ज्ञानादि में उपशम भाव नहीं होता हैं–यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है। उपशम सम्यग्दर्शन भी औपशामिक होता है और

सम्यक्चारित्र भी औपशमिक होता है। आगे और भी सम्यग्दर्शन होगा वह अन्य प्रकार का होगा।

शंका–तो क्या सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र केवल औपशमिक ही होता है?

समाधान–नहीं, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन और भी कई प्रकार का हो सकता है लेकिन यहाँ पर जो लिखा गया है वह औपशमिक सम्यग्दर्शन के भेद बताने के लिए लिखा गया है। इसलिए प्रत्येक सूत्र का हमें सही रूप में अर्थ लगाना चाहिए।

शंका– जिस जीव के पास औपशमिक भाव होगा क्या उसके पास क्षायिक भाव भी होगा कि नहीं?

समाधान–सम्यग्दर्शन और चारित्र–ये दो ही प्रकार के औपशमिक भाव हैं और जिसके पास में इन दोनों सम्बन्धी औपशमिक भाव होगा उसके पास इन दोनों सम्बन्धी क्षायिक भाव नहीं होगा। जहाँ औपशमिक सम्यग्दर्शन होगा वहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होगा। जहाँ औपशमिक चारित्र होगा वहाँ क्षायिक चारित्र नहीं होगा। इन दोनों भावों में से कोई एक ही भाव रहेगा। इसलिए औपशमिक सम्यग्दृष्टि की संख्या अलग होती है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि की संख्या अलग होती है। इसी तरह से चारित्र का भाव होता है। औपशमिक चारित्र वाले मुनि महाराज जब श्रेणियों पर चढ़ते हैं तो उस समय औपशमिक चारित्र का भाव होगा। यह ध्यान तो उपशम श्रेणी में होगा। आपने सुना होगा ध्यान में दो श्रेणी होती हैं। एक उपशम श्रेणी होती है और दूसरी क्षपक श्रेणी होती हैं। उपशम श्रेणी में उस समय जो चारित्र होगा उसको यहाँ औपशमिक–चारित्र कहा गया है। और जो क्षपक–श्रेणी में चारित्र होगा उसे क्षायिक–चारित्र कहा गया है।

क्षायिक–भाव के नौ भेद–

ज्ञान–दर्शन–दान–लाभ–भोगोपभोग–वीर्याणि च ।। 4 ।।

अर्थ–क्षायिक–ज्ञान (केवलज्ञान), क्षायिक–दर्शन (केवलदर्शन) क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और च शब्द से क्षायिक–सम्यक्त्व और क्षायिक–चारित्र ये नौ क्षायिक–भाव हैं।

क्षायिक–भाव के नौ भेद बताए जा रहे हैं। इन्हें क्रमशः लगाना है–पहले ज्ञान अर्थात् क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग और क्षायिक वीर्य इस तरह से ये सात भाव हुए और सूत्र में जो च शब्द आया है यह एक समुच्चय का सूचक होता है। इससे सम्यक्त्व और चारित्र को क्षायिक के साथ जोड़ना है। इस तरह क्षायिक–सम्यक्त्व और क्षायिक–चारित्र इन्हें मिला लेने से क्षायिक के नौ भेद हो जाते हैं। अर्थात् सम्यक्त्व तो औपशमिक भी है और क्षायिक भी है, इसी तरह चारित्र औपशमिक भी है और क्षायिक भी है। इनको हम अपने दिमाग में इस तरह से रख सकते हैं। ये जितने भी भाव दिये गये हैं अर्थात् ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये सारे के सारे भाव यदि होंगे तो केवली भगवान में, अरिहन्त भगवान में और

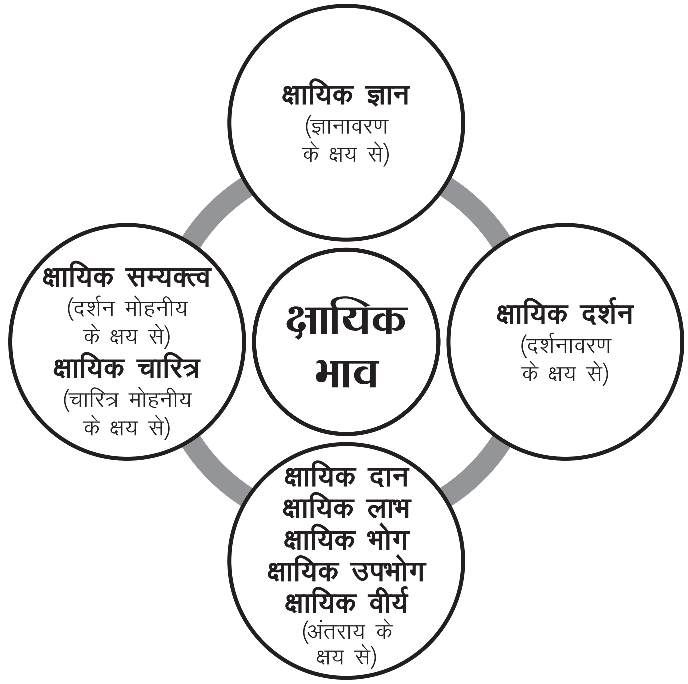

सिद्ध भगवान में ही मिलेंगे। इससे पहले किसी को भी क्षायिक आदि की प्राप्ति नहीं होती है। ये क्षायिक–भाव कहाँ उत्पन्न होंगे?केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर ही होंगे। यहाँ ज्ञान को पहले लिखा गया है क्योंकि जहाँ केवलज्ञान हुआ तो वहाँ दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये स्वतः ही उसके पीछे आ जाएंगे। यदि केवलज्ञान नहीं हुआ तो ये भी नहीं होंगे। कहने का तात्पर्य यह है यदि क्षायिक–ज्ञान हो गया है तो बाकी के छः भाव भी आ जाएंगे।

इसका दूसरा अर्थ इस तरह से भी निकलता है कि क्षायिक–सम्यग्दर्शन और क्षायिक–चारित्र की तो यहाँ ज्ञान के साथ कोई व्याप्ति नहीं है लेकिन इस ज्ञान के साथ में ये भाव अवश्य रहेंगे तो इनकी व्याप्ति बन जाती है। इसलिए यहाँ पर विभक्ति तोड़कर इतने भावों को लिखा है। सूत्र में वीर्याणि पर्यन्त अर्थात् ये सात भाव हमेशा रहेंगे। अगर एक क्षायिक–ज्ञान उत्पन्न हो गया तो बाकी के छः भाव उसमें अवश्य रहेंगे। ऐसा नहीं है कि क्षायिक–ज्ञान हो गया तो क्षायिक चारित्र भी रहेगा या क्षायिक चारित्र आ गया तो क्षायिक ज्ञान भी रहेगा यह नियामकता नहीं बनेगी लेकिन क्षायिक–ज्ञान के साथ में क्षायिक–सम्यक्त्व की नियामकता बन जाएगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये भाव तो केवल अरिहन्त और सिद्ध में अर्थात् 13वें और चौंदहवें गुणस्थान में होते हैं क्योंकि अरिहन्त भगवान तेरहवें गुणस्थान में और अयोग केवली चौदहवें गुणस्थान में, सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत होते हैं। इन सबमें क्षायिकभाव रहेंगे लेकिन क्षायिकसम्यग्दर्शन तो इन गुणस्थान से नीचे वाले जीव में भी होता है और क्षायिकचारित्र भी इन गुणस्थान से नीचे वाले जीवों में भी होता है। क्योंकि क्षायिकचारित्र तो क्षपकश्रेणी में होगा तो आठवें, नवमें, दसवें गुणस्थान के भावों में रहने वाले जो चारित्र होंगे वह कहलाएंगे क्षायिक चारित्र के भाव और क्षायिकसम्यग्दर्शन तो चौथे गुणस्थान में भी हो जाता है। अविरत सम्यग्दृष्टि एक गृहस्थ जीव भी हो सकता है। क्षायिक सम्यक्त्व के और क्षायिक चारित्र के भाव तो अरिहन्त से नीचे के गुणस्थानों में भी हैं लेकिन ये सारे के सारे भाव अरिहन्त आदि की प्राप्ति होने पर उन गुणस्थानों में ही मिलेंगे। इसलिए इन क्षायिक भावों में इन सात भावों का विभाजन अलग और दो भावों का विभाजन अलग किया गया है। यह भी हमें स्पष्ट हो जाता है। इस तरह से यह क्षायिकभाव नौ प्रकार के हुए।

हमें यहाँ समझना है कि ज्ञान उत्पन्न हुआ, किस कारण से हुआ?ज्ञानावरण–कर्म के क्षय से क्षायिकज्ञान होता है। हमें किस कर्म के क्षय से दर्शन होता है? दर्शनावरणी कर्म के क्षय से क्षायिकदर्शन होता है। क्षय का अर्थ है–आत्मा से कर्म का हमेशा के लिए हट जाना। यह भाव यदि एक बार उत्पन्न हो गया तो यह कभी नहीं छूटेगा और आत्मा में हमेशा बना रहेगा। अनन्तकाल तक बना रहेगा। इसलिए क्षायिक–भावों को सादी अनन्त भाव भी कहते हैं। सादी का अर्थ है–प्रारम्भ इनका होगा परन्तु एक बार प्रारम्भ होने के बाद अनन्तकाल तक बना रहेगा।

शंका– किस कर्म के उदय से हमें ज्ञान होगा?

समाधान–कर्म के उदय से हमें कभी ज्ञान नहीं होता क्योंकि कर्म के उदय से तो ज्ञान ढक जाता है। ज्ञानावरणी कर्म का उदय रहेगा तो वह आपके ज्ञान को ढक देगा। उस कर्म का हमें क्षय करना है और यदि क्षय न कर सके तो उसके बीच की एक और प्रक्रिया है जिसका नाम है– क्षयोपशम। क्षयोपशम से भी ज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ जिस ज्ञान की बात की जा रही है वह तो क्षय से हो रहा है जो केवलज्ञानियों को होता है। साधारण मनुष्यों के ज्ञान के विषय में आगे के सूत्र में बताया जाएगा।

हमें यहाँ केवलज्ञानियों के ज्ञान के विषय में समझना हैं। उनमें क्षायिकज्ञान आ गया, क्षायिकदर्शन आ गया, और क्षायिकदान आ गया। क्षायिकदान का अर्थ हुआ –दान अन्तराय कर्म के क्षय से उनमें क्षायिकदान का परिणाम आ गया। इसके बाद लाभ–अन्तराय कर्म के क्षय से उनको क्षायिकलाभ की प्राप्ति होगी, भोग–अन्तराय कर्म के क्षय से उन्हें क्षायिक–भोग की प्राप्ति होगी, उपभोग–अन्तराय कर्म के क्षय से उन्हें क्षायिक–उपभोग की प्राप्ति होगी और वीर्य–अन्तराय कर्म के क्षय से उन्हें क्षायिक–वीर्य की प्राप्ति होगी। यह वीर्य शब्द 'आत्मा की शक्ति' के लिए प्रयोग किया जाता है। आत्मा की अनन्त शक्ति जो उन्हें प्राप्त हो गई है उसे क्षायिक वीर्य कहते हैं। इन्हीं क्षायिक शब्दों के साथ हम अनन्त शब्द भी जोड़ सकते हैं और यह अनन्त शब्द जुड़ जाने से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तसुख, जो अनन्त चतुष्टय हम पढ़ते और सुनते हैं वह यही अरिहन्त भगवान के साथ जुड़ जाते हैं। इन नौ भावों को ही हम नव–लब्धियाँ भी कहते हैं। इस तरह से ये नौ भाव क्षायिक–भाव हो जाते हैं।

शंका– इन भावों का काम क्या है?

समाधान–क्षायिकज्ञान, केवलज्ञान और अनन्तज्ञान ये सभी पर्यायवाची है। इसी तरह से क्षायिकदर्शन, केवलदर्शन और अनन्तदर्शन भी समानार्थी हैं। अर्थात् भगवान् (अरिहंत देव)अपने ज्ञान और दर्शन से अनन्त को जानने की और अनन्त को देखने की क्षमता रखते हैं। अपने ज्ञान और दर्शन से वे अनन्त पदार्थों को जानेंगे और अनन्त पदार्थों को एक साथ देखेंगे। यह क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञान का काम है। यहाँ एक प्रश्न और उठता है कि क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञान से तो

भगवान अनन्त को जानेंगे और देखेंगे, परन्तु क्षायिकदान से वे क्या दान देंगे? तो आचार्य कहते हैं कि वह हम सभी जीवों के लिए अभयदान दे रहे हैं। अनन्त जीव उस अभयदान को प्राप्त कर चुके हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। अरिहन्त अवस्था में रहेंगे तब भी वे अभयदान देंगे और सिद्ध भी बन जाएंगे तब भी वह अभयदान देंगे।

प्रश्न– अभयदान क्या होता है?

उत्तर– उनकी शरण में जो आएगा उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

आप अरिहन्त भगवान की शरण में हैं, सिद्ध भगवान की शरण में हैं तो आपमें एकदम निर्भीकता आ जाएगी। यह उनका अभयदान हुआ। जैसे ही आप उनकी शरण में आओगे वह आपको अभयदान प्रसारित करेंगे, आपके पास अभयदान पहुँच जाएगा। इसके लिए आपको उनसे जुड़े रहना है, उन पर श्रद्धा रखनी है। हमें उनसे सम्बन्ध तो जोड़ना ही पड़ेगा क्योंकि बिना जुड़े तो कुछ भी होने वाला नहीं है। हम चाहते हैं हमें बिना जुड़े सब कुछ मिलता रहे –ऐसा तो नहीं हो सकता। भगवान का ध्यान करने से, उन पर श्रद्धा रखने से हमें किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है।

मान लो, हमने अरिहन्त भगवान का ध्यान किया। उनका ध्यान करने से हमारे परिणामों में विशुद्धि आई तो यह अरिहन्त भगवान का अभयदान हुआ, इस चीज को हम कभी नहीं समझते। जैसे सिद्ध भगवान का ध्यान करते–करते हमारे परिणामों में उपशमन–भाव आ गया, कर्म उपशमित हो गये तो हमें औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, यह भगवान का दिया हुआ दान है। अभी तक हम यही सोचते हैं कि भगवान कुछ देते नहीं और वीतराग भगवान की बात आने पर तो लोग और कह देते हैं कि वीतराग भगवान तो कुछ देते नहीं हैं और वे अन्य–अन्य जगहों पर भागने लग जाते हैं। हमें ये बातें भी लोगों को बतानी चाहिए कि जो हमें अरिहन्त और सिद्ध भगवान दे सकते हैं, वह हमें अन्य कहीं नहीं मिल सकता है और न कोई दे सकता है। क्योंकि अरिहन्त और सिद्ध भगवान का ध्यान करने से हमारे कर्मों का उपशमन होगा, हमारे परिणामों में विशुद्धि आएगी और हमें अत्यन्त शान्ति मिलेगी। इसलिए अरिहन्त और सिद्ध भगवान भी दान देते हैं। इस सिद्धान्त से सिद्ध हो जाता है कि भगवान भी क्षायिक–दाता है उनसे बड़ा दाता कोई भी नहीं है।

ऐसे ही भगवान को लाभ भी हो रहा है। अरिहन्त भगवान को लाभ किस रूप में होगा? आचार्य कहते हैं–उन्हें अपने लाभ अन्तराय कर्म के क्षय से ऐसा लाभ होता है कि जब तक वह अरिहन्त अवस्था में शरीर के साथ रहेंगे तब तक उनके शरीर में जितनी भी शुद्ध, सूक्ष्म, सुंदर, मधुर वर्गणाएं है वे सब उनको प्राप्त होती रहेंगी जो उनके शरीर को वैसा का वैसा ही बनाये रखने में कारण बनेगी। कहने का तात्पर्य है कि भगवान का शरीर बिना कुछ खाए–पिये कई वर्षों तक वैसा का वैसा ही बना रहेगा। अरिहन्त भगवान की जितनी भी आयु बची है उस आयु–काल में अरिहन्त बनने के बाद वह कभी भोजन नहीं करते हैं। अरिहन्त बनने के बाद उनका शरीर वैसा का वैसा

बना रहता है यही उनका क्षायिकलाभ है। यह क्षायिक लाभ सिद्धों में घटित नहीं होगा क्योंकि यह लाभ शरीर के साथ है, और शरीर उनका छूट गया अर्थात् सिद्धों के शरीर नहीं होता तो वहाँ पर यह चीज शक्ति के रूप में है। क्षायिकलाभ के कारण उनके शरीर में कोई परेशानी नहीं आती, उन्हें शरीर सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता। और वर्षों तक जितनी उनकी आयु बची हुई है तब तक बिना कुछ खाये–पिये उनके शरीर में कांति बनी रहती है यह इसी क्षायिकलाभ के कारण से होता है।

एक उदाहरण से आप समझ सकते हैं–भगवान महावीर को 42 वर्ष की आयु में केवलज्ञान प्राप्त हुआ और 72 वर्ष की आयु में मोक्ष की प्राप्ति हुई अर्थात् 30 वर्ष तक उन्होंने न कुछ खाया और न कुछ पिया, फिर भी उनका शरीर एकदम चमकदार बना रहा। इसी क्षायिकलाभ के कारण से उनका शरीर वैसा का वैसा बना रहा।

इसके बाद आता है क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग। ये भी शरीर–सम्बन्धी होते हैं। अब इस भोग और उपभोग से उन्हें कोई काम नहीं है। क्योंकि उन्हें तो अपने अन्तरंग के अनन्त सुख का भोग करना है और उसी का उपभोग करना है। बाहरी चीजें हैं जो हमारी दृष्टि में, देखने में आती है जैसे– भगवान के सामने पुष्पवृष्टि हो रही है, जब तक वह समवशरण में रहेंगे तब तक अनेक प्रकार की सुगन्धित पुष्प–वृष्टि और जल–वृष्टि होती रहेगी। यह उनका क्षायिकभोग कहलायेगा।

जो चीजें एक बार भोगने में आये उसे कहते हैं–भोग और जो बार–बार भोगने में आये उसे कहते हैं–उपभोग। क्षायिक–उपभोग से तात्पर्य है जैसे–भगवान के नीचे रखा हुआ सिंहासन जो हर क्षण तो बदला नहीं जाएगा, उनके ऊपर लगे तीन छत्र, ये सब उनके उपभोग हैं। भगवान इन भोग और उपभोग के बीच में रहते हुए भी, उनका इनके प्रति न कोई राग का भाव रहता है और न अनुराग का भाव रहता है।

क्षायिक–वीर्य का अर्थ है–उन्हें अनन्त शक्तियाँ प्राप्त हो गई हैं। उस अनन्त शक्ति के माध्यम से ही अनन्तज्ञान द्वारा पदार्थों को वह जान सकेंगे। क्योंकि ज्ञान का शक्ति के साथ सम्बन्ध है। यदि आपके पास बहुत ज्ञान है और शक्ति कम है तो आप उसका उपयोग नहीं कर पाओगे। उदाहरण के लिए आपके wire में voltage तो बहुत ज्यादा आ रहा है लेकिन उस wire में उस voltage को सहन करने की क्षमता नहीं है तो वह wire फुँक जाएगा। ऐसे ही ज्ञान से हम बहुत कुछ जानना चाहते हैं लेकिन हमारी आत्मा में शक्ति नहीं होगी तो उस ज्ञान से हम जान नहीं पाएंगे। इसलिए भगवान में जैसे ही क्षायिकज्ञान उत्पन्न हो जाता है वैसे ही क्षायिक– शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। इसलिए इस सूत्र के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि जितना हमारे पास ज्ञान है, उतनी ही हमारे अन्दर शक्ति है। ये शक्ति तो बहुत छोटी है और जो केवली भगवान के पास, अरिहन्त और सिद्ध भगवान के पास शक्तियाँ हैं, ये शक्तियाँ तो अनन्त हैं इसलिए इनको क्षायिकभाव में रखा गया है। ये सब भाव उस आत्मा में अनन्त काल तक बने रहते हैं जो आत्मा एक बार इन भावों को प्राप्त कर लेती हैं।

शंका– संख्यात और असंख्यात और अनन्त से तात्पर्य क्या है?

समाधान–संख्यात संख्या वह होती है जो हम अपने मतिज्ञान, श्रुतज्ञान से गिन सकते हैं।। असंख्यात संख्या वह है जो हमारे ज्ञान से गिनने में नहीं आएगी, जो अवधिज्ञानियों के द्वारा गिनने में आएगी वह असंख्यात है, और जो केवलज्ञानियों द्वारा गिनने में आएगी वह अनन्त है।

प्रश्न – लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर – हमारी उपलब्धि, Achievement हमें जो कुछ प्राप्त हुआ है उसे लब्धि कहते हैं।

क्षायोपशमिक–भाव के अट्ठारह भेद–

ज्ञानाज्ञान–दर्शन–लब्धयश्चतुस्त्रि–त्रि–पंचभेदाः सम्यक्त्व–चारित्र–संयमासंयमाश्च।। 5।।

अर्थ–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षु इन्द्रिय के द्वारा पदार्थों का सामान्य ग्रहण रूप चक्षुदर्शन, शेष इन्द्रियों के द्वारा पदार्थों का सामान्य ग्रहण रूप अचक्षुदर्शन, अवधिज्ञान से पहले होने वाला सामान्य ग्रहण रूप अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, अंतराय कर्म के क्षयोपशम के कारण होने वाला दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच लब्धियाँ, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, सरागचारित्र और संयमासंयम (देशव्रत) ये अठ्ठारह क्षायोपशमिक भाव हैं।

इस सूत्र में क्षायोपशमिक–भावों के भेदों का वर्णन किया जा रहा है। सबसे पहले ज्ञान के विषय में बताया जा रहा है। पहले वाले सूत्र में जिस ज्ञान के विषय में बताया गया था वह क्षायिक ज्ञान था और यहाँ जिस ज्ञान के बारे में बताया जा रहा है वह क्षयोपशमिक ज्ञान है। इस तरह से हमें ध्यान रखना चाहिये ज्ञान भी दो प्रकार का होता है। एक क्षायिकज्ञान और दूसरा क्षयोपशम–ज्ञान। यहाँ क्षयोपशमज्ञान का वर्णन है तो इसी को हमें समझना है। इसी तरह से एक अज्ञान भी है, यह अज्ञान भी क्षयोपशमज्ञान में आता है। इसके बाद दर्शन में भी क्षयोपशम–भाव होता है। दर्शन का अर्थ है जो चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन है ये क्षयोपशम भाव वाले दर्शन कहलाते हैं। इनके भेद भी आगे इसी अध्याय में मिलेंगे। आगे क्षायोपशमिक–लब्धि है इनको इसी क्रम में लगाना है। सबसे पहले लिखा हुआ है चतुः अर्थात् जो क्षायोपशमिक ज्ञान है वह चार प्रकार का है। आपने पढ़ा होगा पाँच ज्ञान होते है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय और केवलज्ञान। केवलज्ञान तो हो गया क्षायिकज्ञान जिसका वर्णन पहले सूत्र में किया जा चुका है। अब यहाँ पर जो चार ज्ञान हैं जो हैं–क्षायोपशमिक ज्ञान। अब आता है त्रि–त्रि का अर्थ–तीन अज्ञान होते हैं। ये मिथ्याज्ञान रूप अज्ञान है अर्थात् मिथ्यात्व के साथ में तीन ज्ञान अज्ञान रूप परिणमन कर जाते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये ज्ञान मिथ्या के साथ भी रहते हैं। जब ये मिथ्याज्ञान होंगे तो इनका नाम बदल जाता है, इनके

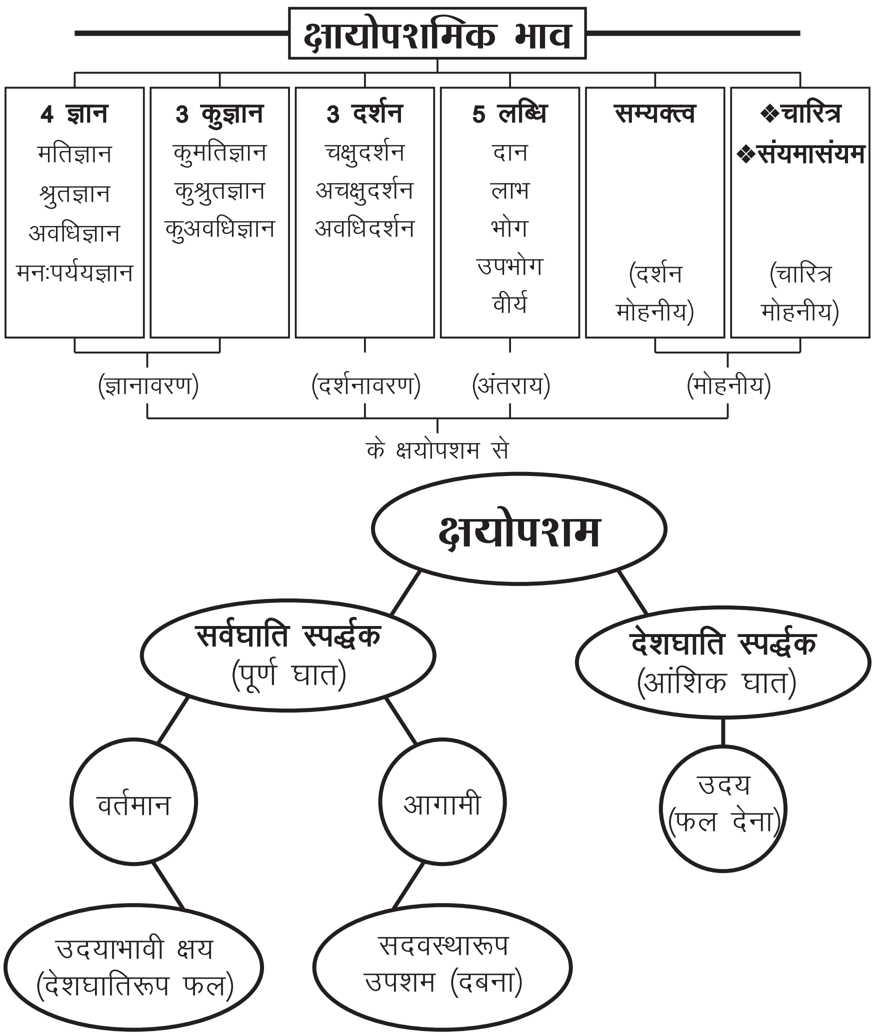

आगे 'कु' लगा देने से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान हो जाते हैं। इस तरह से ये तीन अज्ञान हो जाते हैं और ये तीनों भी क्षायोपशमिक होते हैं।

यदि जीव को सम्यग्दर्शन है तो सम्यग्ज्ञान के रूप में कहलाएगा। इसके बाद तीन दर्शन आते हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन—ये तीनों क्षायोपशमिक भाव हो गये।

इसके बाद लब्धियाँ पाँच होती है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। ये पाँच लब्धियाँ क्षायिक भी होती हैं और क्षयोपशम—भाव के साथ भी रहती हैं। प्रत्येक संसारी जीव में ये क्षयोपशम भाव नियम से होते हैं। यदि उसमें सम्यग्दर्शन होगा तो सम्यग्ज्ञान के रूप में कहलाएगा।

मिथ्यादर्शन है तो उसमें उन तीनों अज्ञानों में से कोई–न–कोई अज्ञान होगा, दर्शन में भी यदि वह चारित्री जीव होगा तो चक्षुदर्शन के साथ में उसका उपयोग बनेगा, नहीं तो अचक्षुदर्शन तो सभी जीवों में होता ही है। लब्धियों में भी दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये पाँचों लब्धियाँ प्रत्येक जीव में होती ही हैं। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय जीव में भी ये लब्धियाँ होती हैं क्योंकि ये अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है और इन कर्मों का क्षयोपशम हमेशा बना रहता है। कर्मों का यदि पूरा का पूरा क्षयोपशम भाव न हो या यह भी कह सकते हैं कि इन कर्मों का यदि पूरा आवरण आ जाए तो ये कर्म उस जीव के गुणों का ही घात कर देंगे। अर्थात् ज्ञान का क्षयोपशम भी सभी जीवों में रहता है। कोई भी जीव ऐसा नहीं होता जिसमें थोड़ा सा भी ज्ञान प्रकट न हो। क्षयोपशम का अर्थ हुआ–थोड़ी सी प्रकटता हो जाना।

जैसे– जो ये माइक होते हैं और टेप रिकोर्डर होते हैं उनमें volume वाले पहिए होते हैं जिनसे हम उनका volume –(आवाज) कम ज्यादा करते हैं। आप विचार करें कि हम उनका volume कम करते गये और बिल्कुल कम कर दिया, volume बिल्कुल कम करने का मतलब आपको कुछ सुनाई ही न दे रहा हो तब यह तो हो गया उसका औदायिक भाव अर्थात् अब आपको कुछ भी सुनाई नहीं देगा। आपने उसको बहुत थोड़ा सा 1 के 1000 वें हिस्से का वोल्यूम बढ़ा दिया, भले ही वह आपको सुनाई न दे तो भी उसमें कुछ न कुछ प्रकटता आएगी और इसको हम कहेंगे –क्षयोपशम भाव।

क्षयोपशम–भाव का अर्थ है–कुछ प्रकट हो जाना और कुछ अप्रकट रह जाना। volume की तो हमारे अंदर बहुत क्षमता है, पूरा loud कर सकते हैं लेकिन उस button ने उसका volume पूरा down कर दिया, अब मान लो हमने थोड़ा–सा उसको प्रकट किया तो जितना प्रकट हुआ वह तो हमको सुनाई पड़ रहा है और जो अप्रकट है वह उसके अंदर पड़ा हुआ है। हम उसको जब दो नम्बर पर, तीन नम्बर पर , चार नम्बर पर लाएंगे तो volume बढ़ जाएगा। यह क्या बढ़ रहा है? यह क्षयोपशम बढ़ रहा है। किसका क्षयोपशम बढ़ रहा है? उस आवाज का क्षयोपशम बढ़ रहा है। ऐसे ही हमारे ज्ञान में होता है जो इन पाँच लब्धियों के साथ होता है। जो एकेन्द्रियादि जीव होते हैं उनमें वह अत्यन्त कम होता है। मानो वह जीरो और एक बीच में रह रहा हो, आपको कुछ समझ ही नहीं आएगा कि वह कुछ है अथवा नहीं, ऐसा होगा फिर भी वह उसमें है। वह होना भी उसके क्षयोपशम ज्ञान को बताता है। ज्ञान हमेशा इस क्षयोपशम–भाव के साथ रहेगा, वह एकदम शून्य नहीं हो जाएगा, जीरो पर नहीं पहुँच जाएगा। उसमें थोड़ा सा परिवर्तन जरूर होगा और वह होने के कारण से उसमें थोड़ी–सी प्रकट दशा आ जाएगी, बाकी जो बहुत सारा है वह अप्रकट है। इसी का नाम क्षयोपशमभाव होता है। जिन जीवों में ज्ञान बढ़ रहा है तो इसका अभिप्राय है–क्षयोपशमभाव बढ़ रहा है। क्षयोपशमभाव बढ़ेगा तो ज्ञान बढ़ेगा और क्षयोपशमभाव बढ़ने का मतलब है कि भीतर एक ऐसी प्रक्रिया चल रही है जिस प्रक्रिया में अंदर जो कर्म हैं, उन कर्मों के उदय को हम हटा रहे हैं, जो हमारे लिए आवरण के रूप में पड़े हैं उनको हम हटा रहे हैं। तो जितने कर्म हटेंगे जितना हमारे अन्दर क्षयोपशमभाव बढ़ेगा उतना हमारी आत्मा का ज्ञान भीतर से प्रकट होगा। आत्मा में ज्ञान तो है, भरा

पड़ा हुआ है, अनन्त ज्ञान है लेकिन वह कर्मों के द्वारा दबा हुआ है। उन कर्मों में थोड़ा–थोड़ा–सा जब क्षयोपशमभाव आता है तो हमारे अंदर वह ज्ञान प्रकट होता है, ये क्षयोपशमभाव ऐसे ही होते हैं। इन क्षयोपशम भावों की यह विशेषता है कि ये क्षयोपशम रूप में ही रहेंगे, कभी भी औदयिक रूप में नहीं आयेंगे। मान लो, पूरा का पूरा ज्ञान ढक दिया हो ऐसा कभी नहीं होगा। किसी भी जीव का पूरा का पूरा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान ढक गया हो ऐसा कभी नहीं होगा, यदि ऐसा हो गया तो उस जीव का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। वह जीव ही नहीं रहेगा, क्योंकि वह कर्म से पूरा का पूरा आवरिक अथवा आवरणिक होने के कारण वह अपने स्वभाव से रहित हो गया। वह जीव अजीव बन जाएगा और ऐसा कभी भी नहीं होता है। एकेन्द्रिय जीव भी होगा, छोटे–से–छोटा जीव भी होगा तो उसमें भी थोड़ा सा ज्ञान तो प्रकट रहता ही है।

इसी तरह से जो ये पाँच लब्धियाँ है दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, ये भी उसमें कुछ न कुछ रूप में प्रकट रहती हैं। जो उसका अपना शरीर है वह उसी का उपभोग कर रहा है वही उसके लिए भोग का कारण है, वही उसका लाभ है, वही उसके लिए दान की शक्ति है कि वह किसी के लिए काम आ रहा है। ये सब चीजें जो उसमें हैं इन्हीं चीजों के कारण उसमें क्षयोपशम भाव चल रहा है। यहाँ यह बताया गया है कि क्षयोपशमभाव जो होते हैं ये सब इन्हीं चीजों में लगते हैं। चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन और पाँच लब्धियाँ इन्हीं में क्षयोपशमभाव प्रतीत होते हैं। ये सब मिलकर अट्ठारह भाव हो जाते हैं।

शंका– भाव से तात्पर्य क्या है?

समाधान–भाव से तात्पर्य आत्मा का परिणाम है। इसे कहते हैं–अपनी चेतना का ही जो परिणाम है वह किसी न किसी रूप में अन्य कर्मों से प्रभावित भी हो रहा है, वही 'स्वतत्त्व' है, वही उसका भाव है। स्व अर्थात् अपनी ही आत्मा का परिणाम, उस परिणाम का नाम ही भाव है। सभी जीवों में ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम भी है और कुछ ज्ञानों पर पूर्ण रूप से आवरण भी है जैसे– अवधिज्ञान है, मनःपर्यय ज्ञान है, ये हमारे ज्ञान पूर्णरूप से ढके हुए हैं। लेकिन हमारा ज्ञान पूरा का पूरा ढका हुआ नहीं है, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो हमारे थोड़े–थोड़े तो हैं। ये जो दो ज्ञान हैं वह क्षयोपशमज्ञान के रूप में है। यह क्षयोपशम किसी का कम है और किसी का अधिक है। हम थोड़ा–सा पुरुषार्थ करेंगे तो यह बढ़ता चला जाएगा। यह बढ़ेगा तो अभ्यास करने पर ही बढ़ेगा। हम चाहते हैं कि कोई मंत्र मिल जाए और वह बढ़ जाए। मंत्रों से इस जन्म में बढ़कर नहीं मिलेगा। दूसरे जन्म में बढ़कर मिलेगा। इस जन्म में हमें थोड़ा सा पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि मंत्रों की आराधना करोगे तो वह इस जन्म में फल प्रदान करे ऐसा कोई आवश्यक नहीं है, परन्तु वह अगले जन्म में अवश्य फल दिखाएगा। पुरुषार्थ करते–करते थोड़ा मंत्र जाप भी करते रहोगे तो उससे आपका ज्ञान वृद्धि को प्राप्त करेगा। सबसे बड़े मंत्र आचार्यों के ये सूत्र होते हैं। ये सूत्र आचार्य अपनी विशुद्धि से, अपने ही ज्ञान से लिखते हैं। उनके पास कितना ज्ञान होगा जो वे इतना बड़ा सार एक–एक लाइन में निबद्ध कर देते हैं और उस विषय का क्रमशः वर्णन करते चले जाते हैं। ऐसे ज्ञान

की आराधना करने से अपने अंदर ज्ञान बढ़ता है। इन सूत्रों को आप स्मरण करेंगे तो आपके अंदर श्रुतज्ञान का क्षयोपशम बढ़ेगा और यही क्षयोपशम आगे और अन्य ज्ञान के क्षयोपशम को बढ़ाने में कारण बनेगा। इसलिए हमें अपना श्रुतज्ञान बढ़ाना है तो इस श्रुत की विनय पूर्वक आराधना करनी चाहिए।

शंका– कुअवधिज्ञान से क्या तात्पर्य है?

समाधान–कुअवधिज्ञान से अभिप्राय है कि जिनमें अवधिज्ञान तो है परन्तु मिथ्यात्व के साथ में है तो उसे कुअवधिज्ञान कहेंगे और यह कुअवधिज्ञान सभी जीवों में पाया जा सकता है। मुख्य रूप से देव और नारकियों में नियम से होता है। यदि देव और नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं तो उनका ज्ञान अवधिज्ञान कहलाएगा, और यदि मिथ्यादृष्टि होते हैं तो उनका वह ज्ञान कुअवधिज्ञान कहलाएगा। मनुष्यों में भी और तिर्यंचों में भी यह ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। वह किसी–किसी को ही होता है और यह मिथ्यात्व के साथ भी होता है और सम्यक्त्व के साथ भी होता है। नियामकता देव और नारकी पर्यायों में होती है।

शंका– लब्धि किसे कहते हैं?

समाधान–लब्धि का अर्थ होता है–प्राप्ति या उपलब्धि जिसे हम आजकल achievement कहते हैं। आप कोई जॉब करते हैं तो कहते हैं कि हमने कुछ achieve कर लिया, हमने अपना status बना लिया, ये भी इसी प्रकार का achievement कहलाता है। आपको यह ज्ञान मिला है, दान, लाभ, भोग, उपभोग और आत्मा की यह शक्ति प्रगट हुई है, यह आपका बहुत बड़ा achievement है। ये आपकी उपलब्धियाँ हैं। जिस उपलब्धि से आप अपने ज्ञान को संभाले हुए हो, दान देने की क्षमता रखते हो, दूसरों की सहायता करने की आपमें क्षमता है। दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हो और अपने लिए भी भोग, उपभोग की सामग्री इकट्ठी कर सकते हो या उसका उपभोग कर सकते हो। ये जो हमारे अन्दर क्षमताएँ उत्पन्न हुई हैं, इन्हीं क्षमताओं को लब्धि कहा जाता है। ये क्षमताएँ नहीं होती तो हम इस प्रकार की कोई भी उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं कर पाएंगे। इसलिए ये लब्धियाँ है। दूसरी लब्धि वह है जो सम्यग्दर्शन के परिणामों को उत्पन्न करने के लिए प्राप्त की जाती है। अर्थात् कुछ विशेष achievment को, विशुद्ध भावों को भी पाँच लब्धियाँ कहते हैं। ये लब्धियाँ हैं वह सभी के लिए सामान्य है। जैसे–सभी मनुष्य सामान्य होते हैं फिर उसमें से कुछ इंजीनियर बनते हैं, कुछ डॉक्टर बनते हैं, अपनी अलग–अलग तरह की जॉब करते हैं। उसी तरह से ये पाँच अन्तराय कर्म की लब्धियाँ है ये तो सभी जीवों में है, ये तो सामान्य है। परन्तु आपको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए कुछ भाव करने पड़ेंगे। वे भाव केवल मनुष्य ही कर पाएंगे, जो इस प्रकार से तत्वार्थ का श्रद्धान करेंगे उन्हीं को होगा। इस तरह से जो विशुद्ध भाव जिनमें उत्पन्न होंगे वे विशेष जीव कहलाएंगे। उनको लब्धियाँ प्राप्त होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है इसलिए उनका नाम भी लब्धि कहा गया है। हम इसे इस तरह से भी समझ सकते हैं। एक सामान्य लब्धि और दूसरी सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की

पाँच लब्धियाँ जिसे हम क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि कहते हैं। इनके प्राप्त होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

इसमें जो क्षयोपशमभाव हैं उनमें क्या विशेषता होती है? आचार्य कहते हैं कि वह विशेषता कर्म के कारण आती है। कर्म में कुछ ऐसी परिणतियाँ हो जाती हैं कि कर्म की सर्वघाती प्रकृतियाँ होती है उनको हम दबा देते हैं और कुछ ऐसी शक्तियाँ जो घात करने का काम नहीं करती हैं वह उदय में आ जाती हैं और क्षयोपशमभाव बन जाते हैं। इस प्रकार के क्षयोपशम भाव बनने पर सम्यक्त्व भी क्षयोपशम भाव के रूप में आ जाता है। जो सात कर्म हैं जो उपशम को प्राप्त हुए थे उनमें एक सम्यक् प्रकृति का उदय आ गया तो वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कहलाने लग गया। क्योंकि उस सम्यक्त्व प्रकृति में देशघाती स्पर्द्धकों का उदय चल रहा है। उस सम्यक्त्व प्रकृति में इतनी क्षमता नहीं है कि वह हमारे सम्यग्दर्शन का घात कर सके। इसलिए इसका नाम क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है।

इसी तरह क्षयोपशम चारित्र भी होता है। जिसके होने पर हम अपने चारित्र गुण का पालन कर सकते हैं। चारित्र पर आवरण करने वाले कर्मों का अभाव होने पर वह क्षयोपशम चारित्र प्रकट होता है।

आचार्य संयमासंयम के विषय में बताते हुए कहते हैं– संयमासंयम को भी क्षयोपशम भाव के रूप में ही कहा गया है। क्षयोपशम भाव में कुछ ऐसे कर्म उदय में आ जाते हैं जिसके कारण चारित्र उत्पन्न होने लगता है, चारित्र में बाधा उत्पन्न नहीं होती है। उन्हें देशघाती कर्म कहते हैं। चारित्र–मोहनीय के देशघाती कर्म जब उदय में रहते हैं उनके कारण से कुछ और कर्म ऐसे होते हैं जो सर्वघाती का कार्य करते हैं। उनके कारण ऐसा भाव बन जाता है जिसे संयमासंयम भाव कहते हैं। यह कर्म–सिद्धान्त की अपेक्षा से हो गया। इसलिए और अच्छी तरह से आप अपने आचरण की अपेक्षा से समझ सकते हैं–ऐसे व्यक्ति जिन्होंने संयम धारण किया हो। जो घर में रहकर देशव्रतों का पालन करते हैं वह भी संयमासंयमी कहलाते हैं। दो प्रतिमाओं से लेकर ग्यारह प्रतिमाओं तक श्रावक धर्म का पालन करने वाले सभी जीव संयमासंयमी कहलाते हैं। इनको संयमासंयमी इसलिए कहते हैं कि इनमें कुछ संयम प्रकट रहता है और कुछ असंयम भी बना रहता है। संयम प्रकट होने से तात्पर्य त्रस जीवों की हिंसा का त्याग होता चला जाता है, त्रस जीवों की हिंसा से विरक्ति बढ़ती चली जाती है इससे संयम का भाव हो गया। लेकिन स्थावर जीवों की हिंसा का असंयम भाव उनके बना रहता है। इसलिए इनमें संयम और असंयम दोनों प्रकार के भाव बने रहते हैं। ये दोनों मिलकर संयमासंयम कहलाते हैं। आपने देखा होगा कि जिनके दो प्रतिमाएँ होती हैं जब वह भोजन करेंगे तो प्रासुक जल का ही उपयोग करेंगे लेकिन नहाने धोने के लिए दूसरे पानी का भी उपयोग कर सकते हैं। इस तरह से उनमें संयम और असंयम दोनों पलते हैं। जो वस्त्र रखेंगे, तो उसको धोने का, सुखाने का, ये सभी कार्य उनके स्थावर आदि की हिंसा का कारण बनेंगे और उसमें यह ध्यान अवश्य रखेंगे कि

उसमें त्रस जीवों की हिंसा न हो जाय तो यह उनके संयम का कारण बनता है। इस तरह से इसे संयमासंयम कहते हैं। यह संयमासंयम क्षयोपशम भाव कहलाता है। क्षयोपशमभाव की यह विशेषता होती है कि यह आत्मा में देशघाती कर्मों के उदय के साथ ही होता है अन्यथा यह औदयिकभाव में चलाा जाएगा और औदयिकभाव कभी भी संयमभाव नहीं होता है। संयम को घात करने वाले कर्मों के उदय का अभाव होने पर यह संयम भाव प्रकट होना कहलाएंगे। इन्हीं को पाँचवें गुणस्थान वाले व्रती जीव भी कहेंगे। जो कम से कम बारह व्रतों का पालन करते हुए तथा दो प्रतिमाओं को धारण करते हुए आगे बढ़ते हैं और उससे पहले जो जीव हैं वे सभी असंयमी या अव्रती ही कहलाएंगे। इस तरह से संयमासंयमी को यहाँ क्षायोपशमिकभाव के रूप में गिना जाता है और इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए इस संयमासंयमी के क्षयोपशमभाव से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा निरन्तर चलती रहती है।

औदयिक भाव के इक्कीस भेद—

गति—कषाय—लिंग—मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध—लेश्याश्चतुश्चतुस्त्रयेकैकैकैक षड्भेदाः।। 6।।

अर्थ—नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव ये **चार गति**, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषायें, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ये **तीन वेद, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्धत्व,** कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पदम, शुक्ल ये **छः लेश्या**—इस तरह सभी मिलकर औदयिक—भाव के इक्कीस भेद हैं।

जो कर्म के उदय से होने वाले भाव हैं उन्हें औदयिक—भाव कहते हैं। **गति**—यह भी एक

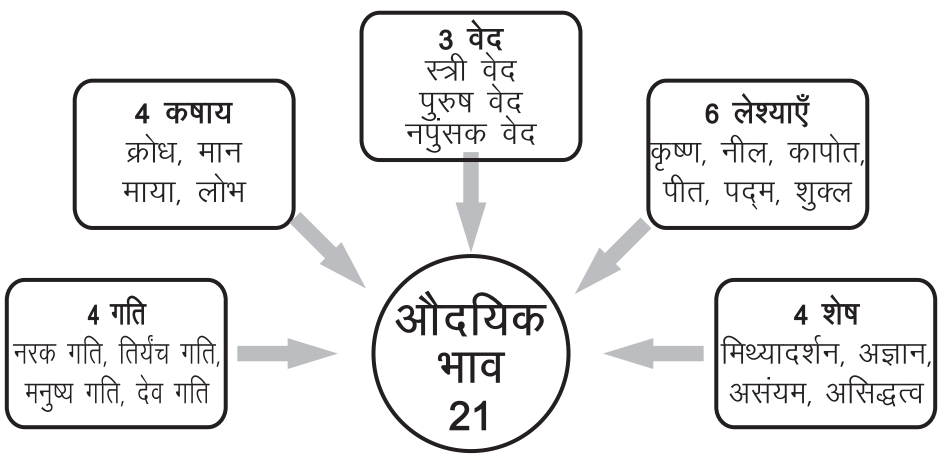

औदयिकभाव है। गतियाँ चार होती हैं—नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। यह गति हमें गति नाम—कर्म के उदय से प्राप्त हुई है और हम जिस गति में रह रहे हैं, उस गति का भाव हममें बना ही रहेगा। आप मनुष्यत्व का भाव अनुभव कर रहे हैं। क्यों कर रहे हैं?गति नाम—कर्म के उदय

से आप स्वयं को कभी भी तिर्यंच जैसा अनुभव नहीं कर पाओगे, न देव जैसा अनुभव करोंगे। कैसा अनुभव करोगे?मनुष्य रूप में ही अनुभव करोगे। यह गति नाम कर्म का उदय है। नाम–कर्मों में भी एक जीवविपाकी कर्म कहलाते हैं, जो जीव में ही अपना फल देते हैं, जो जीव में ही भाव उत्पन्न कराते हैं। गति आदि जितने भी ये भाव बताये जा रहे हैं वे सभी जीवविपाकी कर्म हैं, उनका फल जीव में ही मिलता है। कुछ औदयिक–भाव ऐसे हैं जिनसे हम अभी वर्तमान में पुरुषार्थ करके भी छूट नहीं सकते हैं, उन्हीं में यह गति नाम–कर्म है।

कषाय चार होती हैं–क्रोध, मान, माया और लोभ। ये चार कषाय भी औदयिकभाव हैं। औदयिक भाव का अर्थ–कर्म के उदय से आत्मा में ऐसे भाव आ जाना कि आत्मा को लगे ही नहीं कि मैं अलग हूँ और कषायें अलग हैं। क्रोध करने वाला, मैंने गुस्सा किया, वह उस समय क्रोधमय हो जाता है। मान करने वाला अहंकार मय हो जाता है। मायाचारी करने वाला,लोभ करने वाला इन कषायमय हो जाता है। वह इन कषायों में ही स्वयं को अनुभव करता है। इसलिए इनको औदयिकभाव कहा गया है। इन कषायों के भावों को आप अपने पुरुषार्थ से कम कर सकते है, जीत सकते हैं। इन कषायों के उदय को आप अपने पुरुषार्थ से अपने को बचा सकते हो। इसलिए इनसे तो हम बच सकते हैं, लेकिन जो गति आदि कर्म हैं इनसे बचना कठिन होता है। उनसे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि अन्तर तो कषाय आदि भावों से पड़ता है। इसलिए यह कषाय भी औदयिक–भाव है। अर्थात् कर्म के उदय से आत्मा में उत्पन्न होने वाले भाव।

लिंग–लिंग तीन होते हैं–स्त्रीलिंग, पुरुष–लिंग और नंपुसकलिंग। कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले भाव–लिंग की यहाँ पर व्यवस्था है। अगर आप पुरुष हैं तो आपमें पुरुष का ही भाव रहेगा, मनुष्य गति को पाकर आपने स्त्री पर्याय को प्राप्त कर लिया तो आपके अंदर स्त्री का ही भाव रहेगा वह उस भाव से बच नहीं पाएंगे। आप भले ही दुनिया में कहो कि स्त्री भी पुरुष के समान हैं, कोई किसी से कम नहीं है, लेकिन इन औदयिक भावों में जब तक आप रहोगे तब तक आपमें समानता कभी भी नहीं आ सकती। स्त्री होगी तो स्त्रीगत भाव उसमें रहेंगे, पुरुष होगा तो पुरुषगत भाव उसमें रहेगा। हम कितना भी उनकी समानता करना चाहे, वह समानता कर नहीं सकते। अगर वह समानता हो सकती है तो ज्ञान के रूप में हो सकती हैं। पाँच लब्धियाँ जो पहले बताई हैं उसमें हो सकती है लेकिन इन औदयिक–भावों में कभी भी समानता नहीं हो सकती है।

जैसे–आपने M.B.B.S. किया उस स्त्री ने भी कर लिया, आप Pilot बन गये वो भी Pilot बन गई, आप Everest पर चढ़ सकते हैं तो वो भी चढ़ सकती है। ये सभी भाव ऊपर के क्षयोपशम भाव से हो रहे हैं। स्त्री है तो स्त्री का ही भाव रहेगा, पुरुष है तो पुरुषगत भाव रहेगा ये भाव इन वेदों के कारण आत्मा में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं औदयिक–भावों का हमें अनुभव होता है।

मिथ्यादर्शन–यह मिथ्यादर्शन का भाव है जो मिथ्यात्व कर्म के उदय से आत्मा में उत्पन्न होता है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ भाव, आत्मा का औदयिक–भाव है।

इसी तरह से एक अज्ञान भाव भी है। अज्ञान भाव को इसमें इसलिए रखा है कि जैसे अभी आपको बताया था कि पाँच प्रकार के ज्ञान होते हैं। उन पाँच प्रकार के ज्ञानों में से कुछ ज्ञान का तो हमारे अंदर क्षयोपशम हो गया। जैसे मतिज्ञान है, और श्रुतज्ञान है, ये तो क्षयोपशम रूप में हैं। अवधिज्ञान नहीं है, मनःपर्ययज्ञान नहीं है, केवलज्ञान नहीं है। जब तक ये ज्ञान प्रगट नहीं होंगे तब तक हमारे इन ज्ञानों सम्बन्धी आवरण का पूरा उदय चल रहा है।

केवलज्ञानावरण का पूर्णतः उदय चल रहा है इसी कारण हमें केवलज्ञान नहीं होगा। तब तक ये हमारे अंदर औदयिकभाव के रूप में भी एक अज्ञान चलता रहेगा। इस तरह से अज्ञान दो प्रकार का हो गया—एक क्षायोपशमिक अज्ञान—उस अज्ञान में क्या लिया जाएगा?मिथ्यात्व के साथ होने वाले तीन ज्ञान और दूसरा यहाँ जो अज्ञान है वह ज्ञानावरण कर्म के साथ सामान्य उदय में चलने वाले अज्ञान। जब तक केवलज्ञानावरण कर्म का उदय चल रहा है तब तक हम अज्ञानी हैं, तब तक हमारे अंदर यह अज्ञान नाम का औदयिक भाव चल रहा है। यह अज्ञान रूप औदयिक भाव है जो केवलज्ञानावरण कर्म के उदय के साथ—साथ तक चलता रहेगा।

असंयम—असंयम भाव भी औदयिक भाव है। यह हमारे ऊपर इस तरह से हावी हो जाता है कि हमें संयत बनने ही नहीं देता है। यह असंयत नाम का औदयिकभाव कहाँ तक रहेगा? आचार्य कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि जीव से लेकर चौथे गुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव तक रहेगा, जब तक कि वह देशव्रतों को ग्रहण न कर ले तब तक उसमें असंयत नाम का औदयिकभाव चलेगा। इसके कारण वह संयत नहीं हो सकता है। इसलिए जो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं, उनमें चारित्र नहीं होता है। उनका नाम ही है अविरत—अर्थात् व्रती नहीं है, चारित्र नहीं है क्योंकि चारित्र जो होता है वह क्षयोपशमभाव होता है और असंयत जो है वह औदयिक भाव है। इसलिए उनमें औदयिक भाव रूप असंयम हमेशा बना रहता है। चारित्र उनके पास में नहीं होता है। यह हमेशा ध्यान रखना कि अवरित सम्यग्दृष्टि जीव में चारित्र नहीं होता। इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टियों में चारित्र न व्यवहार से होता है और न ही निश्चय से होता है।

असिद्धत्व—यह असिद्वत्व भाव और आगे चला गया। अपना अज्ञान भाव कहाँ तक गया?जब तक हमें केवलज्ञान नहीं हुआ अर्थात् अरिहन्तों से पहिले—पहिले। इस असिद्वत्व भाग में अरहन्त भगवान भी आ गए क्योंकि जब तक किसी भी कर्म का उदय रहेगा तक तक असिद्वत्व रहेगा। अरहन्त भगवान में चार अघातिया कर्मों का उदय चल रहा है। आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय कर्मों का उदय चल रहा है। इसलिए उन्हें अभी सिद्धत्वपने की अनुभूति नहीं होगी। जब वह उन कर्मों से रहित हो जाएंगे तब वह सिद्ध बनेंगे, तब तक उनके अंदर असिद्धत्व भाव बना रहेगा। जब हम असिद्धत्व भाव को उन अरहन्तों तक भी ले जा सकते है, तो आपको असंयत भाव को स्वीकार करने में क्या बाधा हो रही है?चौथे गुणस्थान तक असंयत भाव रहता है—इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना चाहिए। क्योंकि हम अरिहन्त भगवन्तों तक भी यह असिद्धत्व भाव ले जा रहे हैं तो जो जहाँ पर

जैसा है उसको बताने वाला यह सिद्धान्त होता है, इसी को यथार्थज्ञान कहते हैं, इसमें हमें अपने मन की नहीं करनी चाहिए। जहाँ कहीं भी आपको ऐसा लिखा मिल जाए कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के अंदर चारित्र होता है तो समझना–यह आचार्य भगवंतों की, श्रमणों की वाणी नहीं है।

शंका– अविरत सम्यग्दृष्टि जीव किसे कहते हैं ?

समाधान–जिनको सम्यग्दर्शन तो हो गया लेकिन संयम नहीं आया। चौथे गुणस्थान वाले जीव अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कहलाते हैं। जिनको तत्त्वों का श्रद्धान तो हो गया, लेकिन संयम की उत्पत्ति नहीं हुई, देशव्रत संयम भी ग्रहण नहीं किया, उन्हें अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं।

लेश्या– छः प्रकार की लेश्याएँ होती है। तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं और तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं। कृष्ण, नील, कापोत–ये अशुभ लेश्याएँ और पीत, पद्म, शुक्ल–ये शुभ लेश्याएँ होती है। ये भी हमारे औदयिक भावों में आती है। इन लेश्याओं से तात्पर्य है–कर्म के ऐसे प्रभाव, ऐसे रंग हमारे ऊपर चढ़े हुए हैं, उन रंगों का नाम यहाँ पर लेश्या है। जिन कर्मों के कारण आत्मा में यह भाव उत्पन्न होता रहता है, उसे सामान्य रूप से लेश्या के माध्यम से कहा जाता है। इस तरह से ये सभी औदयिकभाव हैं जो इक्कीस प्रकार के होते हैं।

पारिणामिक भाव के तीन भेद–

जीव-भव्याभव्यत्वानि च।। 7।।

अर्थ–जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व –ये तीन जीव के असाधारण पारिणामिक भाव हैं।

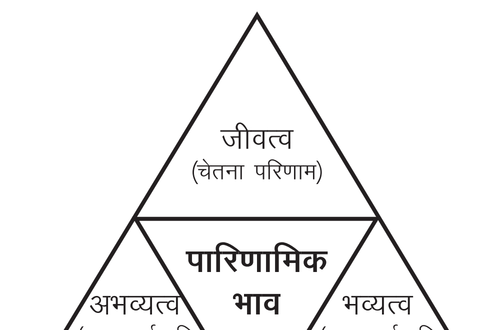

ये जीव के पारिणामिकभाव हैं। पारिणामिकभाव का अर्थ हैं–जो किसी कर्म कारण से नहीं होते हैं। जैसे–जीव भाव–यह जीव है तो जीव क्यों है?यह अजीव है तो अजीव क्यों है?यह किसी जीव नाम–कर्म के कारण से है या यह अजीव नाम–कर्म के कारण से है, ऐसा नहीं है। हम किसी कर्म के कारण से जीव नहीं है–यह कहलाता है पारिणामिक भाव। प्रत्येक द्रव्य में पारिणामिक भाव मिलेगा, जीव आदि सभी द्रव्यों में पारिणामिक भाव होते हैं। जीव में जीव सम्बन्धी पारिणामिक–भावों को लगाना और अजीव में अजीव सम्बन्धी पारिणामिक–भावों को लगाना। अर्थात् जिसका जिस रूप में परिणमन हो रहा है वह उसका पारिणामिकभाव कहलाता है। यह जीव है तो यह जीव ही रहेगा। हम किसी जीव को कभी अजीव नहीं बना सकते, हम उसके लिए अजीवपना

नहीं ला पाएंगे और किसी अजीव को हम जीव नहीं बना पाएंगे। विज्ञान चाहे कितनी भी तरक्की कर ले लेकिन कभी भी वह इस जीव–विज्ञान के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकता है। चाहे वह कितने भी Clones बना ले, कितने भी जीन्स का Development कर ले, जीव–विज्ञान उसके हाथ में आ ही नहीं सकता है। वह कभी भी जीव का निर्माण नहीं कर सकता है। जो जिस रूप में पारिणामिकभाव के साथ में है वह उसी रूप में रहेगा। हम पारिणामिकभाव के रूप में जीव हैं, हमेशा जीव थे, हैं और जीव ही रहेंगे। इसका नाम है जीवत्व पारिणामिकभाव।

इसी तरह से भव्यत्व पारिणामिक भाव होता है। जो भव्य है तो यह भव्यपना भी किसी कर्म के उदय से नहीं होता है। यह भी भव्य होने की शक्ति, भव्य होने की योग्यता, वह किसी में भव्य होने की पड़ी है तो किसी में अभव्य होने की पड़ी है। जीवत्व तो सभी में है, लेकिन सूत्र में आगे जो लिखा है–'भव्याभव्यत्वा' ,जीवत्व तो सभी में रहेगा लेकिन उसमें कुछ भव्य होंगे और कुछ अभव्य भी होंगे। अब ये क्यों हैं?क्योंकि उनमें पारिणामिकभाव है। पारिणामिकभाव का अर्थ है–इसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं है। न किसी कर्म का और न ही किसी भी भगवान आदि की शक्तियों का। हम सोचते हैं कि भगवान ने हमें भव्य बनाया है या हमें अभव्य बनाया है। यह न तो किसी ब्रह्मा ने बनाया है और न ही महेश्वर ने बनाया है। ये सभी जीव के अपने स्वाभाविक भाव हैं। इस तरह से जिन जीवों में भव्यत्व भाव है वह भव्य कहलाएगा और जिन जीवों में अभव्यत्व भाव है वह अभव्य कहलाएगा। बहुत से भव्य जीव मुक्त हो गये और बहुत से संसार में पड़े हुए हैं और वे आगे भी पड़े रहेंगे और बहुतों की उनमें मुक्ति होती चली जाएगी। भव्य और अभव्य इन जीवों से यह संसार कभी भी खाली नहीं होगा। भव्य जीव भी अनन्त है और अभव्य जीव भी अनन्त हैं। इन जीवों से यह संसार कभी भी खाली नहीं होगा। जिनमें योग्यता होती है वह अपनी योग्यता को प्रगट करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भी भव्यजीवों को ही होती है। क्योंकि अभव्य जीवों का एकमात्र पहला गुणस्थान ही होता है। उस गुणस्थान से ऊपर उठना वह उसी के लिए सम्भव है जिसके अन्दर भव्यत्व हो और भव्यत्व भाव जिसमें पारिणामिक रूप से रह रहा हो।

कुछ लोगों के मन में शंका रहती है कि क्या भव्य जीव कभी अभव्य हो सकता है?या अभव्य जीव कभी भव्य हो सकता है?यह बात हमें अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि भव्य कभी अभव्य नहीं हो सकता और अभव्य जीव कभी भव्य नहीं हो सकता। जो जीव जिस रूप में है वह उसी रूप में रहेंगे। यह उनका पारिणामिकभाव है अगर किसी कर्म के उदय से होता तो हटाया भी जा सकता था लेकिन यह तो उनका पारिणामिक भाव है। भव्य जीवों में ही धर्म के प्रति रूचि होती है और निश्छल रूप से धर्म की रूचि है तो वह भव्यत्व का लक्षण बन जाता है। निश्छल का अर्थ है–भीतर से अपने आपको धोखा न देते हुए धर्म के प्रति रूचि रखना। यह रूचि भव्य जीव में होती है। निश्छल रूचि से आप अपने भव्यत्व का ज्ञापन कर सकते हैं। इस तरह जीव के तीन पारिणामिक भाव हो गये। ये सभी मिलाकर त्रेपन भाव हो गये।

जीव का लक्षण–

उपयोगो लक्षणम्।।8।।

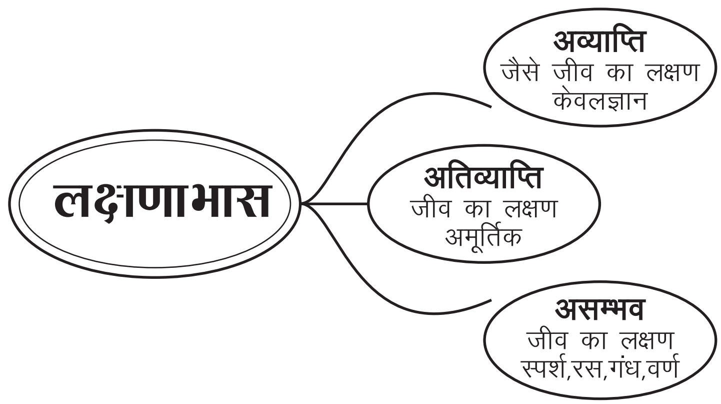

अर्थ–जीव का लक्षण उपयोग है। आत्मा के चैतन्य गुण से सम्बन्ध रखने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं। उपयोग जीव के अतिरिक्त, अन्य द्रव्यों में नहीं पाया जाता।

जीव का लक्षण उपयोग है। जितने भी जीव हैं वे सभी इसी से जी रहे हैं। यही लक्षण उनकी पहिचान कराता है कि वे जीव हैं। उपयोग का अर्थ होता है–चेतना का वह परिणाम जो अपने अन्तरंग कारण के द्वारा भी उत्पन्न होता है और बाहरी कर्मों के क्षय, क्षयोपशम आदि से भी उत्पन्न होता है। वह आत्मा का परिणाम ही उपयोग कहलाता है। एक तरह से हम यह भी कह सकते हैं, "यह आत्मा की क्रिया है" यह क्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है। और इस क्रिया में कुछ कर्मों का भी योगदान रहता है जिसके कारण यह आत्मा अपने उपयोग को निरन्तर किसी न किसी रूप में करता रहता है। प्रत्येक आत्म–द्रव्य में यह लक्षण पाया जाता है। इसे उपयोग कहते हैं। यह चेतना का लक्षण है। इन उपयोगों के जब हम भेद समझेंगे तो हमें इसका विस्तार और समझ आएगा।

उपयोग के भेद–

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः।।9।।

अर्थ–वह उपयोग दो प्रकार का है 1.ज्ञानोपयोग, 2.दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, केवल ये पाँच ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अज्ञान के भेद से आठ प्रकार का है। तथा दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का है।

उपयोग दो प्रकार का है–एक ज्ञानोपयोग है और एक दर्शनोपयोग है। ये दोनों ही उपयोग आत्मा के चैतन्य परिणाम कहलाते हैं। वस्तुतः , देखा जाए तो आत्मा के चैतन्य परिणामों में इन दोनों ही उपयोगों की गिनती आती है या यह भी कह सकते हैं आत्मा चैतन्य रूप से अगर कोई क्रियाएँ करता है तो वह दो ही प्रकार की होती हैं। एक ज्ञानोपयोग की क्रिया और दूसरी दर्शनोपयोग की क्रिया। ज्ञानोपयोग की क्रिया तो जानने का काम करती है और दर्शनोपयोग की क्रिया देखने का काम करती है। जानना और देखना ये दोनों ही आत्मा के स्वाभाविक लक्षण हैं। ये दोनों ही उपयोग,

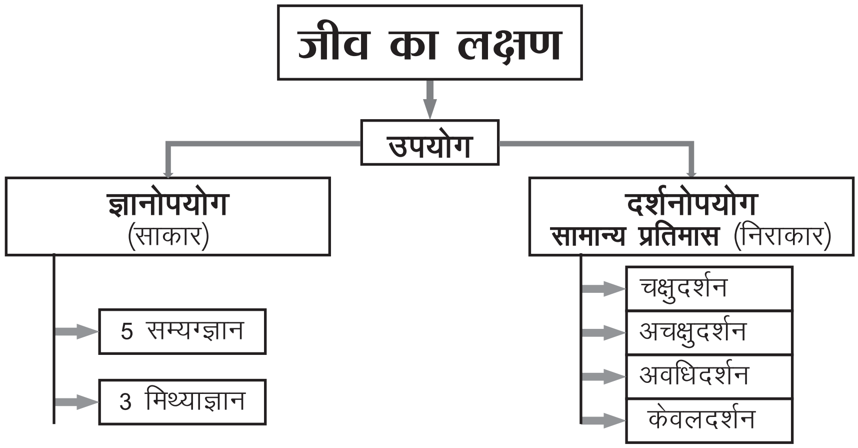

आत्मा के स्वभाव हैं। इन दोनों के माध्यम से ही चेतन पर–पदार्थों को जानता है और देखता है। जब उसको ज्ञान होता है तो वह स्व–पदार्थ को भी जानने और देखने लग जाता है। इस तरह से उपयोग के मूल में दो भेद है। ये दोनों ही भेद चैतन्य के अनविधाई परिणाम है। अर्थात् चैतन्य से उत्पन्न होने वाले परिणाम हैं, चैतन्य की क्रिया हैं। अन्य अनेक प्रकार के गुण भी आत्मा में रहते हैं, लेकिन उनमें चेतना की अनुभूति नहीं होती है। यह भी कह सकते है कि उसमें चेतना के उपयोग का विभाजन नहीं होता है। आत्मा में गुण तो बहुत हैं। सुख गुण है, वीर्य गुण है, अन्य सम्यक्त्व आदि गुण हैं। लेकिन इन गुणों में चेतना कभी विभाजित नहीं होती है। चेतना का विभाजन करने वाले गुण तो केवल दो ही हैं, जो दो उपयोग के रूप में हैं। एक ज्ञानोपयोग और दूसरा दर्शनोपयोग।

अब आपको कभी भी सुख में उपयोग लगाना है तो सुख उपयोग नाम की चेतना में कोई अन्य क्रिया नहीं होगी। शक्ति रूप उपयोग नाम से चेतना में कोई अलग से क्रिया नहीं होगी। ये गुण तो आत्मा में रहेंगे जैसे–सुख है, शक्ति है, सम्यक्त्व है, चारित्र, श्रद्धा, अनेक चीजें हैं। लेकिन ये सब इस ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के साथ ही रहेंगी। उपयोग में तो केवल ये दो ही चीजें आएंगी। उनके अलावा जितनी भी चीजें होंगी वे सभी इसी से सम्बन्ध रखने वाली होंगी। इसलिए धीरे–धीरे केवल उपयोग ही आत्मा में रह जाते हैं और आत्मा धीरे–धीरे उपयोग स्वरूप वाला हो जाता है। जैसे–जैसे वह सिद्धत्व की ओर ढलता चला जाता है, आत्मा के जितने भी विभाजन करने वाले

उपयोग हैं वे सभी छूटते जाएंगे। जितने भी कर्म से उत्पन्न होने वाले भाव हैं वे भी इन उपयोगों को ही प्रभावित करते हैं।

आपने इक्कीस औदयिक भाव पढ़े हैं या सभी मिलाकर त्रेपन भाव पढ़े हैं। ये सब भी ज्ञान पर ही अपना प्रभाव डालेंगे। ज्ञानोपयोग के ऊपर ही अपने प्रभाव से ज्ञान को ही अपनी क्रिया बना करके, ज्ञान के माध्यम से ही आत्मा का अनुभव करायेंगे। अर्थात् इन भावों का अलग से अपना उपयोग नहीं होगा। आत्मा के अनन्त गुण हैं और आत्मा के वे अनन्त गुण अपनी–अपनी क्रियाएँ करने लग जाएँ तो आत्मा पागल हो जाएगी। ज्ञानोपयोग कहेगा–'तू ज्ञान कर', सम्यक्त्व कहेगा–'तू श्रद्धान कर', सुख कहेगा–'तू सुख कर', इस तरह से आत्मा तो पागल हो जाएगा। वह एक समय में क्या–क्या करेगा। आचार्य कहते हैं कि एक समय में इन दोनों में से कोई एक ही उपयोग होगा। ज्ञानोपयोग से वस्तु को विशेष रूप में जानना और दर्शनोपयोग में वस्तु को सामान्य रूप में जानना। जैसे–हम कह सकते हैं कि जब हम किसी वस्तु को जानने का प्रयास करते हैं तो उस पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। हमने किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित किया तो वह ज्ञानोपयोग हुआ और जब हम उसको सामान्य रूप से देख रहे हैं, ध्यान केन्द्रित नहीं कर रहे हैं तो वह दर्शनोपयोग हो गया। दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग में प्रत्येक अर्न्तमुहूर्त–अर्न्तमुहूर्त में अपने ही स्वभाव से परिवर्तित होता रहता है। देखना और जानना, इसमें पहले देखने की क्रिया होगी फिर जानने की क्रिया होगी। देखने की क्रिया में उपयोग को बहुत आराम मिलता है जिसे दर्शनोपयोग कहते हैं, उसमें ध्यान केन्द्रित नहीं करना पड़ता और ज्ञानोपयोग में ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

आप सामान्य रूप में देखें कि एक हाल है, लोग बैठे हुए हैं आपको कोई चिंता नहीं होगी। आपको किसी पर ध्यान केन्द्रित नहीं करना है तो आप सामान्य रूप से देखेंगे, आपको किसी भी प्रकार से कोई जोर नहीं डालना पड़ेगा। यह हो गया आपका दर्शनोपयोग। जब आपने किसी व्यक्ति विशेष पर ध्यान केन्द्रित किया तो आपको सोचना पड़ेगा कि क्या यह वही है जिसे मैं सोच रहा हूँ?कोई अन्य तो नहीं बैठा हुआ है जो उसी शक्ल का या उसके जैसी ड्रेस पहने हुए हो। जब आपका उस पर ध्यान केन्द्रित हुआ तो यह आपका ज्ञानोपयोग हुआ।

आचार्य कहते हैं जब हममें दर्शनोपयोग आता है तो बहुत शांति देता है। अगर हम आध्यात्मिक दृष्टि से इसको समझते हैं तो जब दर्शनोपयोग आता है वह आत्मा में किसी भी प्रकार की टेंशन नहीं देता है। सामान्य रूप से किसी को देखने में कोई टेंशन नहीं होगी और जैसे ही आपने उस पर ध्यान केन्द्रित किया तो वह विशेष हो गया, विशेष हुआ तो ज्ञान हुआ, ज्ञान हुआ तो ज्ञान ने उस विशेष को ग्रहण कर लिया और फिर ज्ञान ने ही उसके अंदर अनेक प्रकार की परिणतियाँ शुरू कर दी। 'यह अच्छा है', 'यह बुरा है', ये सब विचार उस ज्ञान के ऊपर प्रभाव डालने लगे और वे सब मोह, राग, द्वेष की परिणतियाँ कहाँ पर प्रभाव डालेंगी?ये सभी ज्ञान पर प्रभाव डालेंगी। टेंशन किसको होगा?ज्ञान को होगा।

आप में प्रत्येक समय दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग चलता रहता है। यह इतना तेज चलता है कि आप उसको पकड़ नहीं पाते कि किस समय हमारा दर्शनोपयोग हो गया और उस दर्शनोपयोग ने हमें कब शांति दे दी, हमें पकड़ में नहीं आ पाता। क्योंकि ज्ञान आपका तेज दौड़ता है। ज्ञान वस्तुओं के बाहरी रूप को ग्रहण करता है। उस ज्ञान के कारण यह दर्शनोपयोग अपना काम भी कर लेगा और आपको पता भी नहीं चलेगा। उस समय जो आत्मा को आराम मिलता है वह भी आपके अनुभव में नहीं आएगा। आत्मा ने तो अपनी व्यवस्था बनाकर रखी है, Relax करने की भी और कुछ Creativity करने की भी। दोनों ही प्रकार की आत्मा के अंदर स्थिति है। दर्शनोपयोग से वह प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में Relax कर लेती है और ज्ञानोपयोग से वह कुछ विशेष को भी जानती रहती है। फिर दर्शनोपयोग से वह सामान्य हो जाएगी, फिर ज्ञानोपयोग से विशेष को जानेगी। परन्तु उस आत्मा के ऊपर इतने प्रकार के भाव हावी हो गए हैं, कि ये सभी उस आत्मा के ज्ञानोपयोग को प्रभावित करते हैं। आत्मा के ज्ञानोपयोग के ऊपर ही दबाव डालते हैं। जब आत्मा के इस उपयोग पर दबाव बढ़ जाता है तो फिर उसका ज्ञान धीरे–धीरे दब जाता है। ज्ञान जब दब जाएगा, उभर नहीं पाएगा तो उसके लिए अनेक प्रकार की मानसिक बीमारियाँ हो जाएंगी। Depression का मतलब भी यही होता है। ज्ञान Deeply pressure में चला गया और depression हो गया। ज्ञानोपयोग के ऊपर इन भावों का दबाव बढ़ गया, ज्ञान उसे सम्भाल नहीं पाया, क्योंकि कर्मों ने अनेक प्रकार के अभाव उसमें उत्पन्न कर दिए।

दर्शनोपयोग बहुत अच्छा होता है उसको किसी से मतलब भी नहीं होता है। उसको तो वह व्यक्ति ही समझ सकता है जो यह समझे कि ज्ञानोपयोग क्या काम कर रहा है और दर्शनोपयोग क्या काम कर रहा है? लोग केवल पढ़ लेते हैं और पढ़कर अपनी बुद्धि में एक वजन और पैदा कर लेते हैं। अर्थात् ज्ञान होता है, इतने प्रकार का ज्ञान होता है इससे और एक वजन पैदा कर लेते हैं। जबकि ये सभी सूत्र हमें बड़ा हल्का बनाते हैं। आपको बाहर की किसी भी प्रकार की टेंशन है तो इस प्रकार के सूत्रों को पढ़ो तो एक टेंशन इससे कम हो जाएगी और यदि इससे लोग टेंशन करने लगें तो फिर उसका कोई उपाय ही नहीं है।

आचार्यों ने कहा है–अपने दर्शनोपयोग पर भी दृष्टि डालो वही तुम्हें भीतर से शांति देगा और कभी–कभी चीजों को बिना ध्यान केन्द्रित किए भी देखा करो। जैसे–मैं केवल एक दृष्टा हूँ केवल दर्शनोपयोग के माध्यम से देखा करो। आपमें दर्शनोपयोग की प्रवृत्ति बढ़ेगी तो आपकी आत्मा को भीतर से बहुत आराम मिलेगा। ज्ञानोपयोग की प्रवृत्ति अगर बढ़ेगी तो आपके अंदर उतावलापन बढ़ेगा। इन दोनों उपयोगों में से हम सबसे अधिक उपयोग ज्ञानोपयोग का करते हैं, दर्शनोपयोग का तो करते ही नहीं है। दर्शनोपयोग तो क्रमशः अपना कार्य करता रहता है। यदि हम अपना उपयोग उसके ऊपर लगाएं तो हमें बड़ी शांति मिल सकती है। हमारे पास सभी सुविधाएं हैं, सभी प्रकार के Function आत्मा में कार्य कर रहे हैं, परन्तु उनको व्यस्थित रूप से कार्य कराते रहना, यह भी आत्मा का पुरुषार्थ है। इन दोनों उपयोगों में दर्शनोपयोग में कोई भ्रान्ति नहीं है, ज्ञान में ही सभी प्रकार की

भ्रान्तियाँ है। जितने भी निर्णय करना, संशय, विपर्यय ये सभी ज्ञान में होंगे, इनसे मुक्त होना भी ज्ञान में होगा। दर्शन निर्विकल्प होता है। इसीलिए आचार्यों ने कहा है—दर्शन निराकार होता है, निर्विकल्प होता है और ज्ञान विकल्प करता है। उस ज्ञान को विकल्प कराने के अनेक भेद होते हैं। पाँच प्रकार के ज्ञानोपयोग हैं—मतिज्ञानोपयोग, श्रुतज्ञानोपयोग, अवधिज्ञानोपयोग, मनःपर्ययज्ञानोपयोग और केवलज्ञानोपयोग। इन पाँचों प्रकार के उपयोगों में से कोई न कोई ज्ञान का उपयोग एक समय पर बना ही रहेगा। यदि संसारी प्राणी हैं तो उसके पास मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होगा और इन दोनों उपयोगों में से एक उपयोग अवश्य चलता रहेगा।

जब अवधिज्ञान हो जाएगा तो एक उपयोग और बढ़ जाएगा, मनःपर्यय होने पर एक और बढ़ जाएगा और जब केवलज्ञान हो जाएगा तो पिछले वाले सारे हट जाएंगे और केवल एक ही रह जाएगा। केवलज्ञान के साथ में दूसरे उपयोग रहते भी नहीं है और कार्य भी नहीं करते हैं। अन्य जीवों के लिए वह उपयोग साथ में रह तो सकते हैं लेकिन कार्य एक ही करेगा। मतिज्ञान होगा तो श्रुतज्ञान कार्य नहीं करेगा और श्रुतज्ञान होगा तो मतिज्ञान अपना कार्य नहीं करेगा। इसमें भी दर्शनोपयोग में से एक होगा। चार प्रकार के दर्शनोपयोग हैं। चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग और केवलदर्शनोपयोग। जिस समय दर्शनोपयोग कार्य करेगा उस समय ज्ञानोपयोग कार्य नहीं करेगा, जिस समय ज्ञानोपयोग कार्य करेगा उस समय दर्शनोपयोग कार्य नहीं करेगा। एक समय पर एक ही क्रिया होगी। ज्ञानोपयोग में भी जिस समय पर मतिज्ञान कार्य करेगा तो उस समय पर श्रुतज्ञान कार्य नहीं करेगा। ऐसे आत्मा के अंदर एक समय में एक ही क्रिया चलती है एक ही प्रकार का उपयोग चलता है और वह अर्न्तमुहूर्त तक प्रत्येक उपयोग चलता है। अर्न्तमुहूर्त भी छोटा—बड़ा कई प्रकार का होता है, तो एक अन्तमुहूर्त तक यह कार्य करेगा और अपने आप यह बदल जाएगा। इस तरह से यह उपयोग की क्रिया अनादि से अनवरत कर्मों के कारण चलती आ रही है। ज्ञानोपयोग—दर्शनोपयोग, दर्शनोपयोग—ज्ञानोपयोग, ज्ञानोपयोग—दर्शनोपयोग इस तरह से यह क्रम चलता ही रहता है। इस क्रिया से आत्मा को कभी विराम नहीं मिलता है। इसे विराम तब मिलेगा जब यह केवलज्ञानी बन जाएगा। जब दोनों उपयोग एक साथ होंगे। आत्मा को कोई भी क्रिया बाहर के निमित्त से करनी नहीं पड़ेगी वह अपने आप स्वाभाविक होगी, उस समय इस आत्मा का ज्ञानोपयोग बिल्कुल शान्त हो जाता है। कब हो जाता है?जब वह केवलज्ञानोपयोग रूप में ढल जाता है। उस समय आत्मा में ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं, क्रमशः नहीं होते हैं। क्रमशः कब तक होंगे? जब तक इसको केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। केवलज्ञान होने पर एक साथ देखना और एक साथ जानना—यह उपयोग होगा और सब प्रकार के ज्ञान रखते हुए भी कोई मोह, राग, द्वेष नहीं होता है। क्योंकि मोहराग ही आत्मा के ऊपर बोझ डालते हैं। केवलज्ञानी इनसे उभर गए हैं इसलिए वह जानते तो सभी को हैं लेकिन उन्हें कभी किसी से टेंशन नहीं होता है। क्या समझ आया?आप जानते हो तो टेंशन क्यों करते हो? क्योंकि आप 'तुम्हारा—हमारा' करके जानते हो, उसके बिना जान ही नहीं सकते। आपके जानने में टेंशन का यह कारण है। केवलज्ञानी सब जानते

हैं। उनके मन में किसी के लिए भी राग या द्वेष नहीं है। इसलिए केवलज्ञानी को अनन्त को जानने के पश्चात् भी उनके ऊपर कोई भार नहीं पड़ता।

ये सभी चीजें प्रत्येक जीवात्मा के अंदर चल रही हैं और इस उपयोग के माध्यम से प्रत्येक जीव का अस्तित्व बना हुआ है। उपयोग की क्रियाएँ प्रत्येक जीव में निराबाध रूप से चलती आ रही हैं, और चलती रहेंगी। जब भी कोई परिणति बदलेगी तो ज्ञानोपयोग कहीं नही जाएगा, दर्शनोपयोग कहीं नहीं जाएगा केवल उसका रूप बदल जाएगा। जैसे–केवलज्ञान हो गया, अवधिज्ञान हो गया, मनःपर्ययज्ञान हो गया तो ज्ञान की परिणतियाँ बदल जाएगी। लेकिन उपयोग तो कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में विभाजित होकर चलता ही रहेगा। इसलिए उपयोग आत्मा का लक्षण है। लक्षण का अर्थ होता है जो कभी भी अपने स्वभाव को न छोड़े। जिससे उस जीव की पहिचान होती रहे और उस लक्षण के माध्यम से हम हमेशा उसको पकड़ते रहें। लक्षण से ही कोई चीज पकड़ में आती है। जिसे हम Definition बोलते हैं। उसका Particular कोई Character। जीव को कभी पकड़ना है तो वह ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के माध्यम से ही पकड़ में आएगा।

आचार्य जीव के भेद बताते हुए सूत्र कहते हैं–

संसारिणो मुक्ताश्च।।10।।

अर्थ–जीव दो प्रकार के हैं–संसारी जीव और मुक्त जीव।

इस सूत्र में जीव के दो भेद बताए गए हैं–एक संसारी जीव और दूसरे मुक्त जीव। संसारी जीव को यहाँ 'संसारिणो' अर्थात् इसे बहुवचन में लिखा गया है और 'मुक्ताः' इसे भी बहुवचन में लिखा गया है। संसारी जीव भी बहुत हैं और मुक्त जीव भी बहुत हैं। संसारी जीव उन्हें कहते हैं जो संसार में निरन्तर संसरण कर रहे हैं। संसरण का अर्थ है–भ्रमण करते रहना अथवा कर्म के कारण जन्म–मरण की प्रक्रिया में पड़े रहना। यह संसारी जीवों का लक्षण कहलाता है। मुक्त जीव उन्हें कहते हैं जो संसार की इस प्रक्रिया से मुक्त हो गए हैं। वे भी जीव हैं, उनमें भी उपयोग और लक्षण बराबर बना हुआ है। वे केवल अपने केवलज्ञानोपयोगी और केवलदर्शनोपयोगी लक्षण से जी रहे हैं। हम संसारी जीव यहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन इन चार उपयोगों से जी रहे हैं। कुछ लोगों का प्रश्न रहता है–सिद्ध भगवान में क्या रह जाता है?सिद्ध भगवान किससे जीते हैं?उनके पास आत्मा है और आत्मा का जो मूल स्वभाव उपयोग लक्षण वाला है वह उपयोग तो उनका कहीं नहीं गया। वह उपयोग उनका अपने आप स्वाभाविक हो गया कि उस उपयोग से बिना किसी पुरुषार्थ के सब कुछ जान रहे हैं और सब कुछ देख रहे हैं। हम संसारी जीवों को तो बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है। उस पुरुषार्थ में अनेक चीजें हमारे लिए सहायक बन रही हैं। हमारा शरीर, मन, बुद्धि, हमारे सामने का वातावरण, उपदेश आदि आदि... अनेक चीजें हमारे लिए सहायक बन रही हैं। तब हम कुछ जान पा रहे हैं, कुछ सुन पा रहे है और कुछ समझ पा रहे हैं। सिद्ध भगवान बिना किसी सहायता के सब कुछ जान रहे हैं। इसलिए केवलज्ञान को असहाय कहा गया है। आप

लोग इस असहाय शब्द को किस रूप में लेते हो?जिसकी कोई सहायता करने वाला न हो वह असहाय है। आचार्य कहते हैं जिसको किसी की सहायता की आवश्यकता न पड़े वह असहाय है। केवलज्ञान को असहाय कहा गया है। आप असहाय उसे कहते हैं जो बेचारा होगा, जिसके ऊपर आपको दया आ रही होगी, कहने में आ भी जाता है कि बेचारा असहाय पड़ा है। यह शब्द आचार्यों ने केवलज्ञान के लिए दिया। केवलज्ञान कैसा है?असहाय है, उसे किसी की सहायता की जरूरत नहीं है। यहाँ तक कि अपनी इन्द्रियाँ, अपना मन और किसी भी बाह्य वातावरण की जरूरत नहीं है। जो बिना किसी सहायता के स्वतन्त्रता के साथ रहता है और प्रत्येक वस्तु को जानता देखता रहता है उसे केवलज्ञान कहते हैं, मुक्त जीव कहते हैं। ऐसे इन जीवों में यह परिणमन होता है। इन सूत्रों से हमें यह सीखना चाहिए।

कभी आपसे कोई प्रश्न करे कि मुक्त जीवों में क्या होता है? तो कहना उनमें केवल ज्ञानोपयोग होता है, केवल दर्शनोपयोग होता है। उसके माध्यम से वह बिल्कुल निर्विकल्प मोह, राग, द्वेष से रहित होकर उन अनन्त पदार्थों को जानते हैं देखते हैं। वे वहाँ जाकर भी बिल्कुल निष्क्रिय नहीं हो गए हैं। क्योंकि निष्क्रिय का अर्थ होता है—कुछ करना ही नहीं। वह उपयोग की क्रिया वहाँ पर भी चल रही है, वहाँ पर भी क्रियावान है। वह क्या क्रिया कर रहे हैं? वे जानने और देखने की क्रिया कर रहे हैं। इस क्रिया में ही वह आनन्दित रहते हैं। आत्मा का यह स्वाभाविक परिणाम है। इसी को उपयोग और चैतन्य भाव कहा जाता है। इस प्रकार से ये मुक्त जीव होते हैं।

आचार्य कहते हैं कि दो ही प्रकार के जीव होते हैं या तो वे मुक्त होते है या संसारी होते हैं। यहाँ पर जो च शब्द आया है, "संसारिणो मुक्ताश्च" इस च का अर्थ है कि कुछ ऐसे भी जीव हैं जो न अभी पूर्णरूप से संसारी हैं और न मुक्त जीव हैं। ऐसे भी कुछ जीव होते हैं वह इस, "च" शब्द से ले लेना। वे कौन होते हैं? जो संसार में रहते हैं वे संसारी हो गए और जो संसार से मुक्त हो गये वह सिद्ध हुए। इनमें भी कुछ बीच के लोग हैं जो न अभी मुक्त हुए हैं और न ही संसारी है। उनको अरिहंत भगवान कहते हैं। अरिहंत आत्माएं हैं वह च शब्द से लेना। न तो ये संसारी हैं क्योंकि संसार जैसे इनके परिणमन नहीं हैं और न ही ये अभी सिद्धत्व को प्राप्त हुए हैं। पिछले सूत्र में आपको बताया था असिद्धत्व भाव उनके अंदर पड़ा हुआ है, औदयिक भाव का वे वेदन करेंगे। जब तक सिद्ध नहीं बनेंगे तो मुक्त जीव भी नहीं होंगे अर्थात् उन्होंने अभी सिद्धत्व को प्राप्त नहीं किया है और संसार में हैं, संसारी जैसे भी नहीं हैं। संसारी जीवों की तरह उनका मन काम नहीं करता। मन, वचन, काय की कोई क्रियाएं संसारी जीवों जैसी नहीं होती। उनको संसारी जीवों की तरह मोह, राग, द्वेष का कोई परिणाम नहीं होता है। इसलिए वह संसारी भी नहीं है। इसलिए ऐसे जीव जीवनमुक्त कहलाएंगे जो न संसारी हैं और न मुक्त है। इनके अतिरिक्त और भी जो संसारी जीवों के भेद उपभेद आदि है उसे भी इस च शब्द से समझ लेना।

आगे के सूत्र में आचार्य संसारी जीव के भेद कहते हैं—

समनस्काऽमनस्काः ।। 11 ।।

अर्थ–संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं। समनस्क–सैनी–मन सहित जीव, अमनस्क–असैनी–मन रहित जीव।

आचार्य संसारी जीवों के बारे में बताते हुए कहते हैं–संसारी जीव दो प्रकार के है। समनस्क और अमनस्क। समनस्क जीवों को ही हम संज्ञी जीव कहते हैं। जो मन से सहित हों उन्हें समनस्क कहते हैं और जो मन से रहित हों उन्हें अमनस्क कहते हैं। यहाँ पर जीव विज्ञान के बारे में समझ लेना चाहिए कि ऐसे भी कुछ जीव हैं जो अमनस्क हैं, जिनके पास मन नहीं है। मन नहीं होने का मतलब विचारात्मक परिणति का नहीं होना। यहाँ दो चीजें हो गई–एक विचारात्मक परिणति और दूसरी भावात्मक परिणति। ये दोनों चीजें अलग–अलग हैं। भावात्मक परिणति कौन–सी है?जो पिछले सूत्रों में त्रेपन भाव बताए गए थे वह भावात्मक परिणति कहलाएगी। विचारात्मक परिणति कहाँ से आएगी? तो वह उत्पन्न होगी मन में। जिनके मन होगा उन्हीं के विचार होगा। यह इतनी सूक्ष्म साइंस है कि कभी भी जो आधुनिक साइंस है वह इस चीज को समझ नहीं सकती। विचारों और भावों में भी अंतर होता है यह संसार की कोई साइंस नहीं समझा सकती। इसलिए कई लोग जिनमें मन नहीं होता है ऐसी प्रकार की सिद्धि कर देते हैं, उन्हें कुछ ऐसी क्रियाएं देखने में आ जाती हैं जिसके कारण उन्हें ऐसा लगता है कि इसमें भी कुछ ऐसी क्रियाएं हो रही हैं जो मन वालों में होती है। उसे आगे थोड़ा सा बताया जाएगा। लेकिन अभी हमें समझना है विचारात्मक परिणति और भावात्मक परिणति के बारे में। जो मन से रहित जीव हैं उनमें विचारात्मक परिणति नहीं होगी। विचार क्या कहलाता है? हमने कहा आपने सुना और आपने उसके बारे में कुछ विचार किया–यह सही है और यह गलत है। यह सब कुछ विचारों से होता है। इसे मन की वैचारिक परिणति कहते हैं। यह भावात्मक परिणति नहीं है। भावात्मक परिणति कुछ अलग है।

कुछ लोगों का प्रश्न रहता है कि भाव क्या हैं? विचार क्या है? बुद्धि क्या है? तो भावों में और मन की वैचारिक परिणति में अंतर होता है। यह आपको इन्हीं सूत्रों को पढ़कर समझ आएगा। भावों के बारे में आचार्य कहते हैं–भाव वह है जो आपमें कर्म के उदय से चल रहे हैं। जैसे–औदयिक भाव आप महसूस कर रहे हैं कि आप पुरुष हैं, स्त्री हैं, मनुष्य हैं। यह क्या है? यह भावात्मक परिणति है। अगर आपमें कषाय का भाव आया तो यह आपके कषाय की औदयिक भावात्मक परिणति हैं। ज्ञान आपके अंदर काम कर रहा है तो यह आपके क्षयोपशम ज्ञान की भावात्मक परिणति है। आपमें दान लाभादि अनेक प्रकार की लब्धियाँ पड़ी हैं, आपको अपनी आत्मा में शक्ति महसूस हो रही है। ये सभी आपकी भावात्मक परिणतियाँ हैं। ये वैचारिक परिणतियाँ नहीं है। वैचारिक परिणतियाँ अलग हैं। वैचारिक परिणतियाँ मन वाले जीवों में ही होगी।

प्रश्न उठता है कि बिना मन वाले जीवों में क्या होगा? उनमें विचार नहीं होगा बाकी सब भाव उनमें होंगे। ये जितने भी भाव बताए गए हैं ये भाव तो उनमें होंगे लेकिन विचार नहीं होंगे। विचार से

तात्पर्य–उनको समझाया नहीं जा सकेगा, उनको सुनाया नहीं जा सकेगा अगर वे सुनने भी लगेंगे तो सुनकर वे विचार अपने मन के अंदर नहीं रख पाएंगे। जैसे–ऐसा करना है, ऐसा करने से ऐसा होता है। इस प्रकार की समझ, इस प्रकार के विचार मन वालों के पास ही रहते हैं। बिना मन वाले जीवों के अंदर क्या चलता है? भाव चलता है। चीटीं है, चीटें है, कीड़े–मकोड़े हैं ये भी अपना बचाव करते हैं, ये भी अपना जीवन जीना चाहते हैं। कहाँ पर खतरा है यह इनको मालूम रहता है और ये अपने जीवन को बचाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास भी करते हैं। तो यह सब किससे चलता है? मन से नहीं चलता आपको आगे अभी बताया जाएगा इनमें मन नहीं है। ये अमनस्क जीव हैं। मन से रहित जीवों में भी ये परिणतियाँ क्यों हैं? एकेन्द्रिय जीवों में भाव क्यों आ जाते हैं? उनके अंदर कर्मबंध क्यों होते रहते हैं? उनको कर्म बंध कराने के लिए कौन प्रेरित करता है? ये भावात्मक परिणतियाँ जो आपने पहले पढ़ी हैं ये सब उनमें पड़ी रहती हैं। उनके अंदर भी यह क्षयोपशम ज्ञान का भाव हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। छोटा है, थोड़ा है लेकिन उनके अंदर है। और उसी भावात्मक परिणति के कारण उनका जीवन चलता है। उस ज्ञान के उपयोग से ही वे अपने आपको बचा लेंगे। आपने देखा होगा चींटी चली जा रही है और जैसे ही पानी आया उसका मुँह स्वतः मुड़ जाएगा। जैसे ही उसको कुछ आभास हुआ। ऐसे भी जीव प्रायः देखने में आते हैं जो सामने चल रहे होंगे या उड़ रहे होंगे और जैसे ही उन्हें कुछ आहट हुई कि आपका पैर उनसे 10से.मी. दूर भी है तो वह वहीं से मुड़ जाएंगे, वहीं के वहीं वह जीव ठहर जाएगा। वह जीव ऐसे ठहर जाएगा कि आपको पता ही नहीं लगेगा कि यहाँ पर कोई जीव है। जब वह विश्वस्त हो जाएगा कि यहाँ पर कुछ नहीं है तो वह फिर से चलने लग जाएगा। यह सब क्या है? यह उनके अंदर का विचार नहीं है, मन नहीं है यह उनके अंदर भाव चल रहा है। इसे कहते हैं क्षयोपशम भाव। इस ज्ञान के क्षयोपशम भाव से उनकी ये परिणतियाँ चल रही हैं। आपके अन्दर भाव से नहीं चलती। क्योंकि भाव तो आपके अन्दर एक तरह से गौण हो गया। आपका मन हो जाता है तो आपकी सभी परिणतियाँ मन से चलती है। आपको अपने भावों की पहिचान इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि मन हमारे ऊपर हावी रहता है। विचार हमारे ऊपर हावी रहते हैं। इसलिए आप उस भाव तक नहीं पहुँच पाएंगे और जो ये अमनस्क जीव हैं उनमें भाव की प्रधानता रहती है। इसलिए जब आप चलते हो तो आपको चौराहों पर अनेक प्रकार की लाईट लगानी पड़ती है। आपको विचार देने के लिए आपके ज्ञान को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के बाहरी उपाय करने पड़ते हैं। तब आपका मन अलर्ट होता है और इन जीवों का मन अपने ही भावों से अलर्ट हो जाता है, इन्हें किसी भी प्रकार के विचार देने की जरूरत नहीं पड़ती। ये बाहरी आहट मिलते ही अपने आपको संभाल लेते हैं। आप कभी इन जीवों को देखना इनमें मन नहीं होते हुए भी इनका ज्ञान काम करता रहता है। इसलिए इनके अंदर वह ज्ञान तो है लेकिन आपकी तरह मन की वैचारिक परिणति नहीं है इसलिए इनमें भावों की प्रधानता है, इनमें भाव विज्ञान चलता है और आप भावों तक पहुँच नहीं पाते क्योंकि आपका मन विचारों में उलझा देता है। इसलिए यहाँ पर समनस्क और अमनस्क दो प्रकार के जीव बताए गए हैं। जिनमें मन है तो वे विचार करेंगे उसके बिना रह नहीं सकते। जिनमें मन नहीं है तो उनका जीवन कैसे चलेगा? तो बिना विचार के चलेगा इसलिए वे

आपके कहने में बेचारे आ जाते हैं। लेकिन उनके अंदर की जो भावात्मक परिणति है वह आपको इस प्रकार के सूत्रों पर श्रद्धान करने से समझ आएगी। यह बहुत बड़ा जीव–विज्ञान है जो हमें बताता है कि मन का विज्ञान अलग है और भावों का विज्ञान अलग है। इन जीवों का जो संचालन चलता है वह भाव–विज्ञान से चलता है और आपका जो संचालन होता है वह सब मनोविज्ञान से होता है।

इसलिए आपके लिए मनोविज्ञान अलग से बनाना पड़ा। Psychology, Psychologist। जैसे पहले सर्जरीकल डॉ. होते थे तो वे सर्जरी करते थे, ऐसे ही अब मन को संभालने वाले अलग से Psychologist होते हैं। उनको अलग से एक ट्रेनिंग दी जाती है, एक अलग से मनोविज्ञान Develope हुआ है मन वालों के लिए। यह मन है जिसकी सहायता से हमारा सम्पूर्ण जीवन चलता है। इसलिए आप समनस्क जीव हैं। भाव प्रणाली तक आपकी परिणति नहीं पहुँचती। इसलिए आचार्यों को कहना पड़ता है कि आप अपने विचारों से मुक्त होकर अपने भावों को देखें, अपने भावों तक अपना स्पर्श करें। क्योंकि आप अपने भावों तक पहुँच नहीं पा रहे हो। इसलिए कहने में आ जाता है भैया अच्छे भाव बनाओ। अच्छे भाव कैसे बनेंगे? तो पहले मन सामने आएगा, फिर विचार सामने आ जाएगा। पहले अच्छे विचार बनाओ, जब अच्छा विचार बनेगा तो वह आपको भाव तक ले जाएगा और आपके अन्दर अच्छा भावात्मक परिणाम आएगा। तो आप एक तरीके से पराश्रित भी हो गए और अगर आप थोड़ी समझदारी से कार्य करें तो आप बहुत ज्यादा स्वाश्रित भी हो जाएंगे। पराश्रित इसलिए क्योंकि हम मन के आश्रित हो गए और लाभ यह है कि मन ही समझ सकता है और मन को यदि कोई विषय समझ आ जाए तो आपको उन अमनस्क जीवों से ज्यादा सुख मिल सकता है। क्योंकि उनके पास में तो सुख की प्राप्ति का कोई आभास नहीं है। आप अपने मन से उस सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। इसलिए समनस्कों को पहले लिखा गया है। किसलिए? क्योंकि ये बड़े लोग हैं बड़े लोगों को पहले रखना पड़ता है। ये मन वाले हैं, इनको पहले लिखा गया है। इसका भी एक कारण है। संसारी और मुक्त जीवों में संसारी को क्यों रखा गया?क्योंकि उनकी संख्या ज्यादा है। जिनका बहुमत है उनको आगे रखना पड़ता है। ये भी इन सूत्रों के बड़े–बड़े भाव हैं। आचार्य यह भी लिख सकते थे 'अमनस्क/समनस्क' परन्तु नहीं, आचार्य जी ने लिखा, "समनस्कामनस्का" क्योंकि समनस्क वालों का सबसे बड़ा उपयोग है, उनका काम है, वे बड़े हैं, क्योंकि वे अपने मन का उपयोग करेंगे। अमनस्क क्या है, अगर अमनस्कों को पहले रख देंगे तो वे कैसे समझेंगे समनस्क क्या हैं? इसलिए आप बड़े हैं; समनस्क हैं, इसलिए आपको पहले रखा गया है।

इसी क्रम में आचार्य संसारी जीव के अन्य प्रकार से भेद कहते हैं–

संसारिणस्त्रसस्थावराः ।। 12 ।।

अर्थ–संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं। जिसके त्रस नामकर्म का उदय होता हैं वह जीव त्रस कहलाता है, जिसके स्थावर नामकर्म का उदय होता है वह जीव स्थावर कहलाता है।

आचार्य पुनः बताते हैं–संसारी जीव दो प्रकार के हैं। एक त्रस जीव और दूसरे स्थावर जीव। त्रस जीव किसे कहते हैं?'जो चलते फिरते हैं वे त्रस जीव हैं'–ऐसी परिभाषा मत बनाना, यह परिभाषा बाधित हो जाएगी। क्योंकि ऐसे भी बहुत से जीव हैं जो चल फिर नहीं रहे हैं लेकिन त्रस है। मान लो गर्भ में कोई बेटा है तो उसे आप त्रस कहोगे या स्थावर कहोगे। क्योंकि हमने यह परिभाषा बना दी जो चले फिरे वह त्रस जीव है। तो फिर वह क्या कहलाएगा? फिर तो वह स्थावर हो जाएगा। जबकि वह पंचेन्द्रिय है। इसलिए यह परिभाषा मत बनाना जो चले फिरे वह त्रस है और जो नहीं चले फिरे वह स्थावर है।

इसकी परिभाषा आचार्यों ने इस प्रकार दी है–जो त्रसनामकर्म के उदय से दो इन्द्रियादि पर्यायों को प्राप्त कर लेता है वह त्रस जीव है और जो स्थावर नाम कर्म के उदय से एकेन्द्रियादि पर्याय को प्राप्त कर लेता है वह स्थावर जीव है। त्रस अपने आपमें एक नाम कर्म है। त्रस नामकर्म के उदय से दो इन्द्रिय आदि पर्यायों को प्राप्त कर लेना त्रस पर्याय कहलाती हैं। अब चाहे वह हिले डुले, चाहे न हिले–डुले वे त्रस ही कहलांएगे। तो ये जीव त्रस कहलाए बाकि के जो स्थावर नामकर्म के उदय से एक इन्द्रिय आदि पर्याय को प्राप्त करे वह स्थावर कहलाते हैं। ऐसे त्रस और स्थावर जीवों का विभाजन होने से संसारी जीव दो प्रकार के हो जाते हैं। अब इनमें भी त्रस को पहले रखा गया है और स्थावर बाद में है। यह भी इसलिए पहले लिखा गया है क्योंकि इनका मूल्य ज्यादा है। जिन्होंने अधिक इन्द्रियाँ प्राप्त कर ली हैं, जो बड़े हो गए हैं उनको पहले रखना होता है। इन अक्षरों और पदों को पहले रखने का भी एक बहुत बड़ा साइंस है। इन सूत्रों में प्रत्येक चीज का एक बहुत बड़ा विज्ञान छुपा हुआ है। इसका क्रम यह क्यों रखा? एक–एक शब्द एकवचन में क्यों?इन पदों में समास क्यों बनाया? प्रत्येक चीज के आचार्यों ने तर्क के साथ उत्तर दिये हैं। अगर आप अच्छी तरह से तत्त्वार्थसूत्र को समझना चाहते हो तो आचार्य पूज्यपाद महाराज द्वारा लिखित एक ग्रन्थ है सर्वार्थसिद्धि उसको पढ़ना चाहिए। उनके द्वारा इस तत्त्वार्थसूत्र की पहली टीका की गई थी। उसी व्याख्या का अनुसरण बाद के आचार्यों द्वारा किया गया है। इस सर्वार्थसिद्धि से पहले कोई भी टीका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। इन सूत्रों के मर्म भी इन्हीं आचार्य जी ने समझाए। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा ही इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि और समाधितन्त्र आदि ग्रन्थ लिखे गए हैं।

इस सूत्र में यह कहा गया है कि दो प्रकार के जीवों से अर्थात् त्रस और स्थावर से ही यह संसार भरा हुआ है। अब इनमें कौन से त्रस जीव है और कौन से स्थावर जीव हैं?यह आगे बताया जायेगा।

आचार्य स्थावर जीवों के भेद कहते हैं–

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।। 13 ।।

अर्थ–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं।

आचार्य इस सूत्र में कहते हैं—ये सभी स्थावर जीव हैं। पृथ्वी, अप अर्थात् जल, तेज का अर्थ है अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव होते हैं। इन सब जीवों में एक ही इन्द्रिय होती है। इन जीवों में कौन—सी इन्द्रिय होती है ? इन जीवों में स्पर्शन इन्द्रिय होती है। एक इन्द्रिय से ही इनका जीवन चलता है और इन जीवों में भी वे सभी भाव पड़े हुए हैं जो आपको पहले समझाया है। जीव तो बाहर से देखने में बहुत सूक्ष्म है लेकिन उसके अंदर यह सारा संसार पड़ा हुआ है। गति नाम कर्म का उदय, कषाय का उदय, कोई न कोई लिंग, लेश्या, मिथ्यात्व, असंयत, सिद्धत्व इन सभी भावों का वेदन यह जीव करेगा। इन चीजों पर विश्वास कौन करेगा? जिसको इन सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान से कुछ ज्ञान मिलेगा वह ही कुछ सीख पाएगा अन्य दूसरी साइंस से आपको कुछ भी ज्ञान नहीं मिलेगा। जीव—विज्ञान का तो सिर्फ नाम होता है शरीर के विषय में जानकारी करते रहते हैं और नाम कहलाता है—जीव—विज्ञान। वह जीव विज्ञान है ही नहीं। जीव के अंदर क्या है?यह तो इस प्रकार के सूत्रों को पढ़कर ही समझ आता है। पृथ्वीकायिक जीव भी जीव है। पृथ्वी एक जीव है। आज का विज्ञान आज तक इसको सिद्ध ही नहीं कर पाया। अभी भी विज्ञान के सामने चेलैंज है इन चीजों को सिद्ध करने का। अभी तो उसने केवल इसमें से दो चीजों की ही सिद्धि की है। वह जल में जीव मानने लगा है और वनस्पति में जीव मानने लगा है। बाकी के तीनों स्थावरों में भी जीव होते हैं यह उसके दिमाग में नहीं आ रहा है। क्योंकि ये दिखते ही नहीं है। एकेन्द्रिय जीव कभी दिखते ही नहीं है। इनमें भी जो माना है वह दिखने से नहीं माना है। कुछ न कुछ उसमें Sensation दिखाई दे गया है।

जैसे—वनस्पति होती है और जब हम उसके सामने जाते है, उसके पास अच्छे भाव करते हैं, उसके लिए अच्छा सिंचन देते हैं तो उसमें कुछ अलग के तरीके लक्षण आ जाते हैं। जब हम उसके सामने खड़े होकर कोई नकारात्मक भावनाएँ करते हैं, उसके लिए हम धूप आदि की कमी कर देते हैं तो उसमें कुछ अलग तरीके के emotions दिखाई देते हैं। इनको पकड़कर ही विज्ञान ने कहा है कि इसमें भी जीव हैं, क्योंकि इसके emotions बदल रहे हैं। लेकिन यह सिद्धि करने का बहुत अच्छा तरीका नहीं है। फिर भी, यह ठीक है कि आप नहीं मान रहे थे, आपने किसी न किसी रूप में तो माना कि यह भी एक जीव है। ऐसी भी कई चीजें होती है जिसमें Sensation होता है लेकिन जीव नहीं होता है। विज्ञान इसका अंतर नहीं कर पाता क्योंकि उसे समझ नहीं आता कि कहाँ बैक्टीरिया है? कहाँ कैमीकल प्रोसेस है?

जैसे—मान लो दही है। जब दही जमाया जाता है तो उसमें दूध से जमने की जो प्रक्रिया होती है वह पूरी की पूरी एसिड के कारण होती है और उस पूरी की पूरी प्रक्रिया में एक Chemical process चलता है। उसमें जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। लेकिन विज्ञान जब उस प्रक्रिया को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखता है, तो उसमें उसको जीव जैसे दिखाई देते हैं। एक कोशकीय जीव उसको दिखाई देते हैं। यह उनकी अपनी अवधारणा है। अगर वह दही शुद्ध—दूध से बना हुआ है, मर्यादित दूध से बना है, तो उस दही में किसी भी प्रकार के कोई जीव नहीं होंगे। अमर्यादित दूध होगा तो

उसमें त्रस जीव हो सकते हैं। अमर्यादित दूध से दही बनता है तो उसे आचार्यों ने अभक्ष्य कहा है। उसे जीव वाला कहा है। यदि वह दही मर्यादित दूध से बना है तो उसमें किसी भी जीवों की उत्पत्ति नहीं होकर ही दही बनता है। इसलिए कई बार पढ़ने लिखने वाले बच्चों के लिए एक विषय बन जाता है। क्या इसमें जीव हैं?या यह जीव से रहित है। आचार्य कहते हैं–यह प्रक्रिया एक Chemical Process है। दूध से दही बनने में जो भी process होता है वह एक Chemistry है। यदि वह शुद्ध दूध है तो उसमें किसी भी प्रकार से जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। विज्ञान चाहे कुछ भी कहे आपको यह समझना है कि इसमें किसी भी प्रकार के जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। वह दही मर्यादित है तो उसमें जीव नहीं होंगे अगर अमर्यादित है तो बात अलग है।

आचार्य तो सभी बातों का ध्यान रखते हैं। उन्होंने बताया है इतने समय तक आप उसको रखेंगे तो वह मर्यादित रहेगा। वे तो प्रत्येक चीज की मर्यादा बताते हैं। यह इतना बड़ा विज्ञान है जिसे आज का विज्ञान चाहे कितनी भी खोज कर ले परन्तु वह नहीं बता सकता जो हमारे आचार्यों ने हमें बताया है। अब वह धीरे–धीरे इस बात को मानने लगा है जिन चीजों में मर्यादाएँ होती है, अगर उन मर्यादाओं से बाहर जाते हैं तो उसमें अलग प्रकार के परिवर्तन होने लग जाते हैं। उसमें रूपान्तरण होने लग जाते हैं। वर्ण से वर्णान्तर, रस से रसान्तर , अर्थात् उसमें जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। यह जैन–विज्ञान आज भी सिद्ध होता है चाहे आज का साइंस इसे सिद्ध न कर पाए। इसलिए हमेशा ध्यान रखना कि पृथ्वी में, जल में, अग्नि में, वायु में और वनस्पतियों में एकेन्द्रिय जीव हैं।

कुछ लोग कुतर्क करते हैं–आप वनस्पति खाते हैं और हम माँस खाते हैं इसमें क्या अन्तर है? आज के बच्चों को स्कूलों में ज्यादातर इस प्रकार के प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। जो एकेन्द्रिय जीव होते हैं उनमें कभी भी माँस नहीं होता है। उनके जो शरीर होते हैं वे एकेन्द्रिय शरीर के माध्यम से इस तरह के बने होते हैं कि जहाँ पर पृथ्वी, जल, वायु है। वे उसी में जन्म ले लेते हैं और उसी में से निकलते चले जाते हैं। उनके शरीर में कभी भी हड्डी, रक्त, माँस नहीं होता है। जिनमें ये चीजें पाई जायें उसे माँस कहते हैं। वनस्पतियों में कभी भी हड्डियाँ नहीं होती, उसमें रक्त नहीं होता, जो सात धातुएं त्रसों में बनती है वह भी उनमें नहीं मिलेंगी। इसलिए वनस्पतियों की तुलना माँस से नहीं हो सकती। एकेन्द्रिय जीव कहने मात्र से वह माँस नहीं हो गया। उसमें जीव है लेकिन वह निकल गया। यही पद्धति भोजन में भी बताई गई है। यदि आपके भोजन में त्रस जीव आ जाए तो भोजन को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि वह भोजन अशुद्ध हो गया क्योंकि उस जीव में जो रक्त, माँस इत्यादि होगा उससे उसका सम्पर्क हो गया। वह भोजन अब हमें नहीं करना चाहिए। यह उसके पीछे का तर्क संगत कारण है। एकेन्द्रिय जीव से कभी भी भोजन में अशुद्धि नहीं होती है। एकेन्द्रिय भी उसी तरह से हैं जैसे हम श्वांस ले रहे हैं। जैसे श्वांस के बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता उसी तरह पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति के बिना भी हमारा जीवन नहीं चल सकता। जबकि त्रस की हिंसा के बिना हमारा जीवन चल सकता है। यह बहुत बड़ा अन्तर है और इस अन्तर को वैज्ञानिक नहीं समझेंगे, आप न उनको समझा पाएंगे और न आप कभी यह विश्वास कर पाएंगे कि ये क्या कह रहे

हैं? हमें इसका क्या उत्तर देना है? ये कहलाते हैं–स्थावर जीव। इनमें किसी में भी माँस सम्बन्ध नहीं होता है। त्रस जीवों से वह चीज शुरू होती है।

आचार्य आगे के सूत्र में त्रस जीवों के भेद कह रहे हैं–

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।। 14 ।।

अर्थ–दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय जीवों को त्रस कहते हैं

अर्थात् दो इन्द्रियादि जीव त्रस होते हैं। एक इन्द्रिय के आगे जितने भी दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय जीव हैं–वे त्रस जीव होते हैं। इन त्रस जीवों का वर्णन यहाँ स्थावर जीवों के बाद किया गया है। इसका भी कारण है। पिछले सूत्र में त्रस जीवों को पहले लिखा था, "संसारिणस्त्रसस्थावराः" अब इस सूत्र में त्रस को बाद में लिखा गया है। इसका कारण यह है कि स्थावर जीवों का वर्णन तो इतना ही है जितना हमने बता दिया। जो पाँच भेद बताए गये हैं वे स्थावरों के हैं। इसलिए उसका वर्णन एक सूत्र में कर दिया। लेकिन त्रसों का वर्णन बहुत बड़ा है। अब त्रसों के विषय में बताया जाएगा।

शंका– क्या निगोदिया–जीव स्थावर–जीव है?

समाधान–हाँ, निगोदिया–जीव स्थावर–जीव है। ये एक इन्द्रिय जीव होते हैं।

शंका– अगर निगोदिया जीव स्थावर हैं तो पाँच प्रकार के जीवों में से ये किसमें गर्भित होते हैं?

समाधान–निगोदिया जीव वनस्पतिकायिक में गर्भित होते हैं। वनस्पतिकायिक के भेद–प्रभेदों में ही निगोदिया जीव आ जाते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक में ये जीव नहीं होते है। जितनी भी वनस्पतियाँ होती हैं वे सारी निगोदिया जीवों से ही भरी रहती हैं। उन्हीं निगोदिया जीवों के माध्यम से सब पोषण होता है। आपके शरीर का पोषण भी उन निगोदिया जीवों के माध्यम से ही होता है। अनन्त–अनन्त निगोदिया जीव एक शरीर में भरे हुए होते हैं। इन सभी निगोदिया जीवों का विस्तार वनस्पतिकायिक जीवों में आ जाता है। इसलिए ये निगोदिया जीव स्थावर जीवों में गर्भित हो जाते हैं।

शंका– हमारे जैनधर्म में माना गया है कि पानी एक इन्द्रिय जीव है। अमेरिका में जब खोज की गई और जब उसे माइक्रोस्कोप से देखा तो उसमें बहुत जीव दिखाई दिये। प्रश्न है–जो जीव दिख रहे हैं उसे त्रस जीव मानेंगे या स्थावर जीव मानेंगे ?

समाधान– वे सब त्रस जीव ही हैं। क्योंकि उन्होंने गिनकर बताया है कि पानी की एक बूंद में छत्तीस हजार चार सौ पचास जीव होते हैं। जो आप छत्तीस हजार चार सौ पचास जीव गिन रहे हो वे त्रस जीव हैं। जो वास्तव में एकेन्द्रिय जीव हैं वे कभी भी पकड़ में नहीं आ सकते, क्योंकि उनके शरीर की

जो अवगाहना है, उनकी जो क्षेत्र को घेरने की क्षमता है वह बहुत छोटी होती है। घनांगुल का असंख्यातवां भाग–इतनी छोटी उसकी अवगाहना है। उसको आप कभी पकड़ ही नहीं सकते हो। उनकी जो कुछ भी पकड़ है वह त्रस जीवों की ही है।

शंका–पानी की एक बूंद में छत्तीस हजार चार सौ पचास जीव होते हैं। जब पानी को गर्म करते हैं, तो वे मर जाते हैं। तो हम भगवान का अभिषेक कैसे करते हैं?

समाधान– पानी को आप गर्म करें अथवा न करें उनको तो मरना ही है। जल को प्रासुक करने से यह लाभ होगा कि 12 घंटे तक या चौबीस घंटे तक उसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति नहीं होगी। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो एकेन्द्रिय जीव के भाव के कारण उसमें त्रस जीवों की बहुत उत्पत्ति हो जाएगी जिससे त्रस जीवों के घात का आपको अधिक दोष लगेगा। जल को प्रासुक करने से त्रस जीवों की उत्पत्ति नहीं होगी। इससे आप और अधिक पाप से बच जाएंगे।

इसी क्रम में त्रस जीवों का वर्णन करते हुए आचार्य इन्द्रियों की संख्या कहते हैं–

पंचेन्द्रियाणि।।15।।

अर्थ–इन्द्रियाँ पाँच होती है।

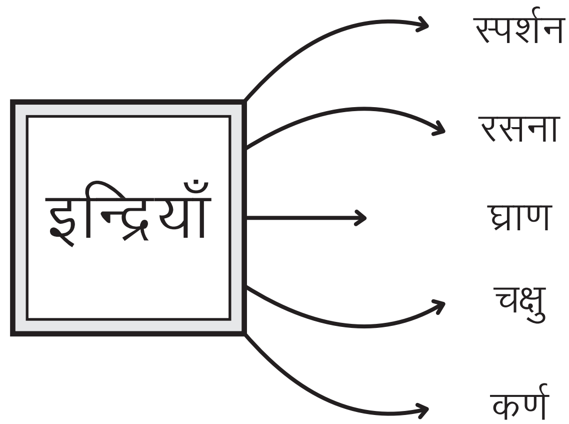

इस सूत्र में आचार्य कहते हैं–इन्द्रियाँ पाँच होती है। आपने बचपन से ही सुना होगा कि इन्द्रियाँ पाँच होती है। इस सूत्र के माध्यम से विशेष इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि अन्य सम्प्रदाय के लोग इन्द्रियों की संख्या पाँच के अतिरिक्त और भी मानते हैं। शरीर की संख्या पाँच के अतिरिक्त और भी मानते हैं। शरीर के अन्दर जो वचन है, अंगोपांग पीठ आदि को भी इन्द्रियाँ मानते हैं। उन सबका निराकरण करने के लिए यहाँ लिखा है कि इन्द्रियाँ पाँच ही होती हैं। ऐसा क्यों कहा गया? आचार्य कहते हैं कि यहाँ पर उपयोग की मुख्यता है। आपको पहले ज्ञानोपयोग बताया गया था उस उपयोग के माध्यम से ही इन्द्रियों का कार्य होता है। उपयोग में पाँच ही इन्द्रियाँ आती हैं। पाँच इन्द्रिय–ज्ञान सम्बन्धी ही उपयोग होगा। अन्य जो हमारे शरीर में अंग–उपांग रहते हैं वे कार्य तो करते हैं लेकिन उपयोग जो होगा वह पाँच इन्द्रिय सम्बन्धी ही होगा। इसलिए उपयोग की मुख्यता में इन्द्रियाँ पाँच ही बनती हैं। अन्य सम्प्रदायों में कर्मेन्द्रियाँ मानी जाती है। जिनसे हम कर्म करते है उनको वे इन्द्रियाँ मानते हैं। लेकिन आचार्य कहते हैं–आत्मा में उपयोग की विवक्षा से जब देखते हैं तो ये पाँच ही इन्द्रियाँ सभी प्रकार के कर्म करने में तत्पर रहती हैं। क्योंकि हम जो भी कर्म करेंगे वह इन पाँच इन्द्रियों से

अतिरिक्त नहीं होगा। इन पाँच इन्द्रियों के विषयों में ही सभी कर्म शामिल हो जाते हैं।

इन्द्रियों के भेदों को बताते हुए आगे लिखते हैं–

द्विविधानि।।16।।

अर्थ–इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती है–द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

इन्द्रियों के मुख्य रूप से दो भेद हैं। एक कहलाती है द्रव्येन्द्रिय और दूसरी कहलाती है भावेन्द्रिय।

द्रव्येन्द्रिय का स्वरूप बताते हुए आचार्य आगे के सूत्र में कहते हैं–

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्।।17।।

अर्थ–निर्वृत्ति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

यहाँ पर द्रव्येन्द्रिय का स्वरूप बताया जा रहा है। निर्वृत्ति का अर्थ होता है–रचना। हमारी इन्द्रियाँ जो शरीर के रूप में हमें दिखाई देती है, जिनकी रचना आत्मा के प्रदेशों में होती है, वह रचना और उपकरण ये दोनों ही द्रव्य–इन्द्रिय कहलाती हैं। एक तो उन इन्द्रियों की रचना और दूसरा उन इन्द्रियों की रक्षा करने वाले ऊपर जो उपकरण होते हैं उसे उपकरण कहते हैं।

उदाहरण के लिए जैसे आपकी आँख है। आँख के अंदर जो आपको लाल या काला द्रव्य दिखाई देता है उस काली गोलक के अंदर जो पॉइन्ट–बिन्दु– होता है वह पॉइन्ट वस्तुतः निर्वृत्ति कहलाती है। जिसकी रचना होने पर ऊपर जो कुछ भी रचनाएं होती हैं वे उसी आँख की रक्षा करने के लिए होती हैं। उस आँख के लिए वह उपकरण इसलिए कहलाते हैं कि जो मुख्य करण "नेत्र" की ये रक्षा करते हैं। अर्थात् आँख की गोलक के अंदर जो हमें बिन्दु दिखाई देता है उसे निर्वृत्ति कहेंगे और उस निर्वृत्ति के आसपास जो कुछ भी सफेद या लाल द्रव्य है और उसके ऊपर भी आपकी पलकें हैं, बिरौनी हैं ये सभी उपकरण कहलाते हैं। निर्वृत्ति रचना का नाम है और उस निर्वृत्ति की जो रक्षा कर रहे हैं उसका नाम उपकरण है। इस तरह से यह द्रव्येन्द्रिय है। किसी भी विज्ञान की पहुँच इस द्रव्येन्द्रिय तक ही होती है। आगे बताई जाने वाली भावेन्द्रिय तक विज्ञान की पहुँच नहीं होती है। उपकरण में अगर कोई खराबी आएगी तो हम उपकरण तक अपने किसी औजार को ले जा सकते हैं। उपकरण को हम किसी भी बाहरी निमित्त से संभाल सकते हैं। उनका हम ऑप्रशेन कर सकते हैं। निर्वृत्ति तक भी हमारी पहुँच हो सकती है। लेकिन अगर वह होगी तो इसी निर्वृत्ति और उपकरण स्वरूप द्रव्येन्द्रिय तक ही हमारी पहुँच होगी। भावेन्द्रिय को कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता है। आपकी आँख में कोई भीतर से खराबी हुई है और वह निर्वृत्ति तक भी आ गई है, तो ऐसी भी कई बीमारियाँ हैं जिनको डॉक्टर लोग ठीक नहीं कर सकते हैं।

एक रोगी ऐसा सामने आया जिसकी आँखों में जो पानी बनने वाली ग्रंथि होती है, उसमें पानी नहीं बन रहा था। डॉक्टर ने कहा इसका कोई इलाज नहीं है। अब जो भीतर से रचना नहीं हो रही है, जो भीतर से स्राव नहीं हो रहा है, उसको कोई भी डॉक्टर उत्पन्न कर नहीं सकता। जितने भी ऑप्रेशन होते है वे लगभग उपकरणों की संभाल तक ही होते हैं। आँख का पर्दा, रेटीना इत्यादि जो कुछ भी बिन्दु हैं, वे सभी बाह्य उपकरण ही कहलाते हैं। इन उपकरणों की देखभाल करने के लिए भी ऊपर के कुछ उपकरण होते हैं। जैसे–हमारी पलकें होती है। ये पलकें भी हमारी आँखों की रक्षा करती हैं। कभी भी आपको तेज हवा का झोंका लगेगा तब आपकी आँखें तुरन्त बंद हो जाएंगी। कभी भी आपकी आँखों में धूल जाएगी तो आपकी पलकें बन्द हो जाएंगी। फिर भी आप सतर्क नहीं रह पाए तो आपकी आँखों में धूल जा सकती है। बचाव करने के लिए ये उपकरण हमेशा तैयार रहते हैं। इन्हीं उपकरणों को द्रव्येन्द्रिय के रूप में कहा गया है।

जैसे–हमने नेत्र इन्द्रिय की रचना समझी, उसी तरह हमें कर्णेन्द्रिय की रचना भी समझनी चाहिए। यह कान जो हमें बाहर से दिखाई दे रहा है, यह कान नहीं है यह तो उसका बाहरी उपकरण है। कान तो अन्दर है। जहाँ हमारे शब्द टकराते हैं उस पर्दे पर, जहाँ पर हमें ज्ञान होता है वह उस अभ्यंतर उपकरण के रूप में है। जो हमें बाहर से दिखाई दे रहा है,यह उसका बाहरी उपकरण है।

इनके भी दो–दो भेद हैं। पहली है अभ्यंतर निर्वृत्ति और दूसरी का नाम है बाह्य निर्वृत्ति। इसके बाद एक अभ्यंतर उपकरण और दूसरा बाह्य उपकरण है। डॉ. की चिकित्सा अभ्यंतर और बाह्य उपकरण तक ही सम्भव है। ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वृत्ति तक भी उनकी चिकित्सा सम्भव नहीं होती है। इस तरह पाँचों ही इन्द्रियों में द्रव्येन्द्रियां होती हैं। इस द्रव्येन्द्रिय की रचना के पीछे भी एक बहुत बड़ी रचना है। जिसका नाम भावेन्द्रिय है। भावेन्द्रिय तक तो कोई भी साइंस या मशीन नहीं पहुँच सकती है।

आचार्य आगे के सूत्र में भावेन्द्रिय का स्वरूप कह रहे हैं–

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।18।।

अर्थ–लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं।

भावेन्द्रिय भी दो प्रकार की हैं। एक लब्धि कहलाती है और दूसरा उपयोग कहलाता है। लब्धि से तात्पर्य है जो हमें ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हुआ है उसे लब्धि कहते है। 'किस जीव को कितनी इन्द्रियाँ प्राप्त होगी'– इस बात की पूरी की पूरी तैयारी उस आत्मा में प्राप्त हुए कर्म के क्षयोपशम से होती है। वह आत्मा किस नामकर्म के उदय को प्राप्त कर रहा है। त्रस बन रहा है या स्थावर बन रहा है। त्रसों में भी वह दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय या चार इन्द्रिय बन रहा है। उसमें भी जो इन्द्रियाँ उत्पन्न हो रही हैं–उनके ही अनुसार उनका क्षयोपशम होगा। चार–इन्द्रिय नामकर्म के उदय के साथ होगा तो उसके अंदर चार इन्द्रियों का ही क्षयोपशम होगा। उतनी ही उसको उपलब्धि

होगी। यदि वह जीव त्रसों में दो इन्द्रिय नामकर्म के उदय को प्राप्त होगा तो उसमें दो इन्द्रिय सम्बन्धी ही क्षयोपशम होगा। उतनी ही उसकी रचना होगी। ये सारी की सारी रचनाएं आत्मा में कर्म के उदय से और जो कर्म ज्ञान के क्षयोपशम के रूप में रहते हैं, उसके कारण से आत्मा में होती हैं। इसलिए ये ज्ञानेन्द्रिय के रूप में कही जाती हैं। कहने का तात्पर्य है कि लब्धि का अर्थ हमारी आत्मा में कर्म का क्षयोपशम होना है। जिसके माध्यम से हमें पाँच इन्द्रियों का ज्ञान होगा। जिसके पास चार इन्द्रियाँ हैं तो उसके पास चार इन्द्रियों के ज्ञान सम्बन्धी ही क्षयोपशम होगा। अर्थात् क्षयोपशम विशेष का नाम लब्धि है और उस क्षयोपशम के अनुसार आत्मा में उस क्रिया के होने का नाम उपयोग है। क्षयोपशम के अनुसार आत्मा उस–उस व्यापार के लिए कार्य कर रही है। इसका नाम ही उपयोग है। ये लब्धि और उपयोग दोनों ही एक तरह की भावात्मक परिणतियाँ हैं। इसलिए इनको यहाँ पर भावेन्द्रिय के रूप में लिखा गया है। अर्थात् ये हमारी आत्मा के भाव से सम्बन्ध रखते हैं। जैसा हमारे अंदर क्षयोपशम होगा वैसी ही भावात्मक प्रक्रिया शुरू होगी और उसी भावात्मक प्रक्रिया के अनुसार ऊपर कहे हुए द्रव्येन्द्रियों की निर्वृत्तियाँ और उपकरण बनना शुरू होंगे।

निर्वृत्ति में भी आचार्य कहते हैं कि जहाँ पर हमारी आत्मा में रचना होनी है, आत्मा में केवल वहीं के उत्सेध अंगुल के असंख्यात प्रदेश वहीं पर उस रचना को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे आपके अंदर ज्ञान का क्षयोपशम तो पूरी आत्मा में होगा। वह क्षयोपशम लब्धि के रूप में और उपयोग के रूप में होगा। लेकिन जो निर्वृत्ति अर्थात् रचना होगी वह आँख की आँख के स्थान पर ही होगी। क्षयोपशम तो पूरी आत्मा में है लेकिन रचना आँख के स्थान पर आँख की और कान के स्थान पर कान की है। जो ये रचना होती है पहले आत्मा के प्रदेश उस नेत्र इन्द्रिय के रूप में अपनी रचना वहाँ पर कर लेते हैं। उसे अभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं। उस अभ्यन्तर निर्वृत्ति होने के बाद वहाँ पर जो पुद्गलों का समूह इकट्ठा होने लग जाता है उसे बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। फिर उस बाह्य रचना होने के बाद द्रव्य उपकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और उसके बाद अन्त में बाह्य उपकरण की प्रक्रिया शुरू होती है। इस तरह से यह चार चीजें तो द्रव्येन्द्रिय सम्बन्धी हैं– अभ्यंतर निर्वृत्ति, बाह्य निर्वृत्ति, अभ्यंतर उपकरण और बाह्य उपकरण। तब जाकर यह आँख दिखाई देती है। ये चार चीजें तो पुद्गल में हो रही है इसलिए इसे द्रव्य इन्द्रिय की मुख्यता से कहा गया है। भाव इन्द्रिय में जो कर्म का क्षयोपशम हम पिछले जन्म में लेकर आये हैं उसके अनुसार आत्मा अपना उपयोग करने लग जाता है। लब्धि और उपयोग दोनों मिलकर भावेन्द्रिय कहलाते हैं।

इस तरह से इन छः चीजों के माध्यम से आत्मा के अंदर इन्द्रियों की रचना होती है। चार द्रव्येन्द्रिय स्वरूप और दो भावेन्द्रिय स्वरूप है। इन सबके संयोग के बाद कोई आत्मा अपनी इन्द्रियों की रचना करता है और इन इन्द्रियों से अपना काम लेता है। इस ग्रंथ को, इन सिद्धांतों को पढ़कर आप समझ सकते हैं हमारे पूर्वजन्म के क्षयोपशम से हमें सब कुछ मिल रहा है। हमारा जन्म पञ्चेन्द्रिय पर्याय में हुआ। पाँच इन्द्रियाँ तो हमने गर्भ में ही बना ली हैं। ये सारी रचनाएं गर्भ में ही हो जाती हैं। वहीं पर आत्मा अपना यह उपयोग करता रहता है। लब्धि और उपयोग के माध्यम से

पुद्‌गलों का समूह वहाँ पर इकट्‌ठा होता रहता है। द्रव्येन्द्रियों की रचना भी वहाँ पर होती रहती है और जब हम पूर्ण हो जाते हैं तब हमारा जन्म होता है। ये रचना समझ में आने पर आप समझ सकते हो कि सारा का सारा पुरुषार्थ आत्मा का स्वयं का होता है। आत्मा स्वयं अपने कर्म का क्षयोपशम पूर्व जन्म से लेकर आता है। कोई उसे हाथ नहीं लगा सकता है। वहाँ तक कोई मशीन नहीं पहुँच सकती। किसी भी आत्मा को हम पंचेन्द्रिय या चार इन्द्रिय का नहीं बना सकते। यह तो उसके स्वयं के ही पुरुषार्थ और क्षयोपशम का कार्य है। ये सब होने के बाद में अपने आप उस तरह के पुद्‌गल परमाणु उस आत्मा के प्रदेशों पर इकट्‌ठे होने लग जाते हैं। उन–उन स्थानों पर स्थिर रूप से वह रचना होने लग जाती है और वही रचना होकर हमारे शरीर में दिखाई देने लग जाती है। किसी भी भगवान का इसमें कोई हाथ नहीं है। कोई भी भगवान न हमको पंचेन्द्रिय बना रहा है, न हमें आँखें दे रहा है और न हमारी आँखों को खराब कर रहा है।

यदि किसी के जन्म से ही इन्द्रियों में कोई विकलता (कमी) है तो उसके स्वयं के क्षयोपशम की कमी, अन्य असाता वेदनीय कर्मों के उदय के फल से उसको इस प्रकार की शरीर की रचना मिलती है कि उसकी कुछ इन्द्रियों में खराबी है या विकलताएं हैं। ये सब चीजें हमें अपने कर्म के अनुसार ही प्राप्त होती हैं। इसलिए जन्म से जो चीजें प्राप्त होती है उनमें सुधार करना बहुत कठिन होता है या यह भी कह सकते है कि असम्भव होता है। इस तरह से द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के स्वरूप को समझकर यह जानना कि इन्हीं से हमारी आत्मा की पहिचान है। किससे आत्मा की पहिचान है?ये पाँच इन्द्रियाँ हमारी आत्मा है। क्योंकि पाँच इन्द्रियों को लिए हुए यह जो आत्मा है उसकी पहिचान इन इन्द्रियों से हो रही है। इन्द्रियों की परिभाषा में आचार्यों ने कहा है–"इन्द्रिय हमारी आत्मा की पहिचान का लिंग है अर्थात चिह्न है" इसी के माध्यम से आत्मा की पहिचान हो रही है। जो चार इन्द्रिय के रूप में मच्छर हैं, कीट– पतंगे इत्यादि हैं, इनकी पहिचान इन्हीं इन्द्रिय के रूप में होगी कि वह चार इन्द्रिय आत्मा है। इन इन्द्रियों को भी समझकर हम अपनी आत्मा की पहचान कर सकते हैं कि मैं पाँच इन्द्रिय वाला आत्मा हूँ। मेरी आत्मा में पाँच इन्द्रियों की लब्धियाँ, उपयोग, निर्वृत्तियाँ, उपकरण सब मिलकर मैं पाँच इन्द्रियों के भोग–उपभोग को पूर्ण रूप से देख रहा हूँ और कर रहा हूँ। यह ज्ञान जब हमारे अंदर आता है तो अपने आप हमें कर्मों पर विश्वास होता है और अपनी आत्मा पर विश्वास होगा। यह भी विश्वास होगा कि बाहरी कोई भी चीजें करने वाली नहीं है। अपने कर्म के क्षयोपशम से ही प्रत्येक आत्मा अपनी इन्द्रियों की प्राप्ति करता है। गर्भ से बाहर आने के बाद तो आप अपनी इन्द्रियों की सुरक्षा अपनी बुद्धि से जितना चाहे कर सकोगे लेकिन क्षयोपशम जिसको जितना मिल गया है वह तो बना ही रहेगा।

यदि कोई आँख से नहीं देख सकता है तो भी उसके पास क्षयोपशम तो है। वह नेत्र इन्द्रिय–जन्य क्षयोपशम कहलाएगा। फिर कमी किसमें है? कमी उपकरण में कहलाएगी। क्योंकि निर्वृत्ति भी हुई है, लब्धि भी हुई है, उपयोग भी है लेकिन द्रव्य–उपकरण में कमी आ गई है। या यह भी कह सकते हैं बाहरी उपकरण या अभ्यतंर उपकरण में कमी आ गई है। इसके कारण उसको

दिखाई नहीं दे रहा है। सुनाई नहीं दे रहा है या सुनना कम हो गया। ये सब चीजें उपकरणों की कमी से होती है। द्रव्य इन्द्रिय की कमी से होती है क्योंकि भावेन्द्रिय में तो क्षयोपशम उसका बना हुआ है। उसका सुधार कोई भी डॉ. नहीं कर सकता। द्रव्येन्द्रिय में सुधार अपेक्षित होता है।

इन पाँच इन्द्रियों के नाम आचार्य आगे के सूत्र में बताते हैं–

स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुः–श्रोत्राणि ।।19।।

अर्थ–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियों के नाम हैं।

ये पाँच इन्द्रियाँ है। पहली स्पर्शन इन्द्रिय, दूसरी रसना इन्द्रिय, तीसरी घ्राण इन्द्रिय, चौथी चक्षु इन्द्रिय और पाँचवी श्रोत्र इन्द्रिय हैं। यह क्रम भी इसीलिए रखा गया है क्योंकि ये इन्द्रियाँ क्रम–क्रम से ही प्राप्त होती हैं। अक्रम से कोई भी इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। जिसके पास एक इन्द्रिय है तो एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होगी। दो इन्द्रिय जीव है तो उसे स्पर्शन के बाद रसना इन्द्रिय ही मिलेगी अन्य बीच में से कोई इन्द्रिय नहीं मिलेगी। तीन इन्द्रिय जीव है तो उसे क्रम से प्राप्त क्षयोपशम के अनुसार घ्राण इन्द्रिय मिलेगी, चौथी इन्द्रिय चक्षु इन्द्रिय और पाँचवी श्रोत्र इन्द्रिय ही मिलेगी। इन सभी इन्द्रियों की प्राप्ति बड़े–बड़े पुण्य कर्मों को करने से होती है। अपनी आत्मा में अच्छे कर्मों के कारण क्षयोपशम होने से इन इन्द्रियों की हमें उपलब्धियाँ होती हैं। इसलिए इनको लब्धि कहा जाता है या उपलब्धि कहा जाता है। अगर देखा जाए तो इसको कोई उपलब्धि मानता ही नहीं है, इसकी तरफ कोई ध्यान देता ही नहीं है कि हमने कितने पुण्य किये, कितने जन्मों के बाद हमको ये उपलब्धि हुई कि पाँच इन्द्रियों के क्षयोपशम मिले। कितने कीड़े–मकोड़े तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय होते हैं। जिनका जन्म एवं मरण होता रहता है। इस उपलब्धि को जब आप ध्यान में नहीं रखोगे तो आप परेशान रहोगे। जैसे ही हमारी आँख खुली और पाँच इन्द्रियाँ मिली तब हम दूसरी उपलब्धि की ओर दौड़ने लग जाते हैं। वह उपलब्धि क्या है? वह उपलब्धि है–मन की तृष्णाओं की पूर्ति। क्या हमने कभी ये विचार किया कि ये जो पाँच इन्द्रियाँ मिली वो किससे मिली? इनके पीछे किसका हाथ है? अगर आप कभी अपने अर्न्तमन से इन इन्द्रियों के बारे में सोचोगे तो आपको लगेगा इसमें किसी का हाथ नहीं है। यह तो अपने ही किसी विशेष पुण्य और पुरुषार्थ का कार्य है। जिससे हमको ये उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। ऐसी उपलब्धियों को प्राप्त करने के बाद इनका घात करना या इनके द्वारा अपना अहित करना ऐसा कोई ज्ञानी व्यक्ति कभी नहीं करेगा। हमें हमेशा यह विचार करना चाहिए कि हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि ये हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं। इनका हमें सद्पयोग करना है। कभी–कभी इनका दुरुपयोग हो जाता है।

जब आप अधिक मोबाइल को देखेंगे, टी.वी. को देखेंगे तो इन इन्द्रियों के ऊपर भी आघात पहुँचता हैं। उदयपुर की एक घटना है–एक व्यक्ति के दोनों कानों में मोबाइल लगा रहता था। एक से बात खत्म की तो दूसरे से बात शुरू हो जाती और उससे बात खत्म होती तो तीसरे से बात शुरू हो जाती। सारे दिन उसके कानों पर मोबाइल लगा रहता था। वह एक बहुत बड़ा व्यापारी था।

उसके दोनों कानों में कैंसर हो गया। डॉ. ने उसके कैंसर का कारण बताया ज्यादा मोबाइल का प्रयोग करने से इसको कैंसर हो गया। डॉ. ने कह दिया अब मोबाइल को हाथ भी नहीं लगाना है। ऐसी भयंकर बीमारियाँ इन उपकरणों के अधिक प्रयोग से हो जाती हैं। अब इन इन्द्रियों का हमने उपयोग किया या दुरुपयोग किया। तो यह दुरुपयोग कहलाया। हमें यह इन्द्रिय मिली थी कुछ पुण्य के उदय से, कुछ और उपयोग करने के लिए। हमने इसका इतना दुरुपयोग किया कि वह हमारे लिए कैंसर का कारण बन गया। उस खबर को सुनने के बाद लोगों को अहसास हुआ कि मोबाइल से भी कैंसर होता है। यह–कहलाता है इनका दुरुपयोग। अर्थात् हमने कोई बहुत पुण्य किये थे उससे हमें इन इन्द्रियों की प्राप्ति हुई। उस उपलब्धि पर तो हमने ध्यान नहीं दिया, अन्य उपलब्धियों को मानकर हम उनके पीछे दौड़ने लगे और उसके कारण इस प्राप्त धन को हमने खो दिया। ये इन्द्रियाँ हमारा बहुत बड़ा धन है। इस धन पर तो हमने ध्यान नहीं किया और इसकी हानि कर ली तो यह एक तरह का आत्मघात हो गया। केवल मरने का नाम ही आत्मघात नहीं होता। अपनी इन्द्रियों को अपनी अज्ञानता से घात पहुँचाना भी आत्मघात कहलाता है। आचार्य कहते हैं इन इन्द्रियों की उपलब्धियाँ हमें हुई हैं। हमें यह समझना है ये कैसे हुई हैं? यह हमारे बहुत बड़े पुण्य कर्मों का फल है। यह हमें कभी ध्यान नहीं रहता और हम दूसरी चीजों में उलझते रहते हैं। उन दूसरी चीजों को उपलब्ध करने को हम उपलब्धियाँ समझते रहते हैं। इस शरीर को हमने कैसे प्राप्त किया है?–यह विचार हमारे अंदर कभी नहीं आता है। इसीलिए लोग आत्महत्या कर लेते हैं। हमें यह समझना है कि इस मनुष्य पर्याय में हमें इन इन्द्रियों का घात नहीं करना है।

इन इन्द्रियों के विषयों के विषय में आचार्य आगे के सूत्र में बताते हैं–

स्पर्शरसगन्धवर्ण–शब्दास्तदर्थाः ।। 20 ।।

अर्थ–स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये क्रम से (ऊपर कही हुई) पाँच इन्द्रियों के विषय हैं।

इस सूत्र में कहते हैं स्पर्श इन्द्रिय स्पर्श को ही ग्रहण करेगी, रसना इन्द्रिय रस को ग्रहण करेगी, घ्राण इन्द्रिय गंध को ग्रहण करेगी, चक्षु इन्द्रिय वर्ण (रंग) को और श्रोत्र इन्द्रिय शब्द को ग्रहण करेगी। इन पाँच इन्द्रियों के अपने–अपने कार्य हैं और इनके अपने–अपने विषय हैं। कोई भी इन्द्रिय किसी को भी बाधित नहीं करती है। सभी इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं और इन इन्द्रियों के माध्यम से ही आत्मा में सुख–दुःख का वातावरण बनता रहता है। जिसे इन्द्रिय के विषय अनुकूल मिल जाते हैं वह सुखी होता है। जिसको प्रतिकूल मिलते हैं वह दुःखी होता है। ये सभी इन्द्रिय के विषय हैं जिसका आत्मा उपभोग करता रहता है। इन पाँच विषयों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। अब इन पाँच इन्द्रियों के जो विषय है वे सारे मूर्तिक होंगे। जिन पदार्थों का हम सेवन करेंगे उन पदार्थों में इन पाँचों ही चीजों से सम्बन्धित गुण होंगे। ये गुण पुद्‌गल पदार्थों में पाए जाते हैं। इसलिए हम इन पाँच इन्द्रियों के माध्यम से जिन पदार्थों का सेवन करते हैं वे केवल पौद्‌गलिक

पदार्थ होते हैं या पुद्गल होते हैं। उनमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण की योग्यता अवश्य रहती है। जो भी हमारे भोग–उपभोग में पदार्थ आते हैं वे इन्हीं इन्द्रियों के विषय बनते हैं। चेतना होते हुए भी चेतना कभी चेतना का उपभोग नहीं कर सकती। चेतना कभी किसी चेतना का न स्पर्श कर सकती है, न उसका रस ले सकती है, न किसी को सूँघ सकती है और न ही चेतना कभी चेतना को देख सकती है। ये इन्द्रियों के माध्यम से इन्द्रियों के विषय ग्रहण होते हैं। चेतना इन सबको करता रहता है, भोगता रहता है। इसलिए चेतना इन इन्द्रियों का, "भोक्ता" कहलाती है। इन इन्द्रियों का स्वामी कहलाती है। यह अपने शरीर का भीतरी विज्ञान हैं इसी विज्ञान के साथ एक चीज और आ जाती है। यदि पाँच इन्द्रियाँ ही होती तब तो आपकी दौड़ इतनी नहीं होती जितनी आज दिखाई दे रही है। उस दौड़ का सबसे बड़ा कारण आगे आने वाले सूत्र में कहा गया है। जब तक इन पाँच इन्द्रियों के साथ मन नहीं जुड़ता तब तक इन पाँच इन्द्रियों के अनेक–अनेक, नए–नए विषयों के लिए कभी भी आत्मा का पुरुषार्थ नहीं होता। इसलिए इन पाँच इन्द्रियों के जितने भी हम अच्छे–अच्छे विषय ढूँढ़ते हैं वह इन इन्द्रियों के कारण नहीं ढूँढ़ते हैं वह हम मन के कारण से ढूँढ़ते हैं।

मन का विषय आगे के सूत्र में बताया गया है–

श्रुतमनिन्द्रियस्य ।। 21 ।।

अर्थ–मन का विषय श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ हैं।

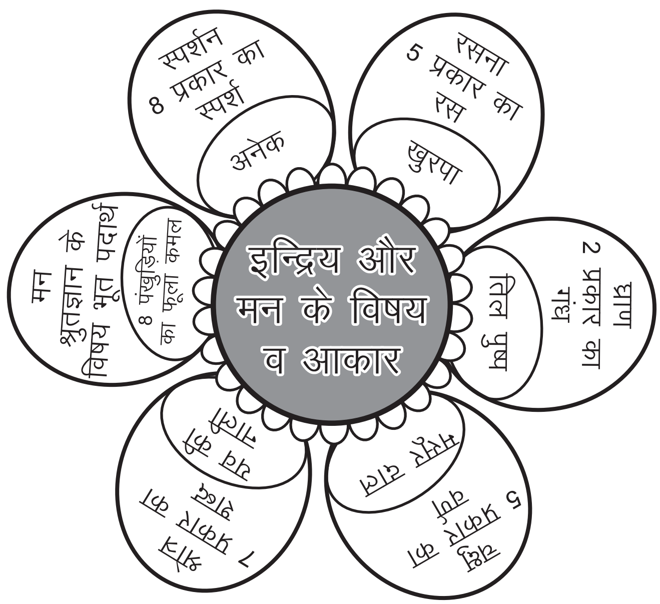

मनिन्द्रिय–मन इन्द्रिय नहीं है अर्थात् अनिन्द्रिय है। यह मन जो है वह अनिन्द्रिय कहलाता है। इन्द्रिय की तरह इसका स्थान नियत नहीं है। जैसे–आँख का स्थान नियत है। आँख को हम खोलेंगे और आँख से ही हम देखेंगे। कान का स्थान नियत है। कान, कान की जगह पर ही मिलेगा, आँख के स्थान पर ही आँख होगी। लेकिन मन कहाँ होगा? मन का इन्द्रियों की तरह कोई भी स्थान नियत नहीं है। इस मन के कारण ही सारी गड़बड़ियाँ होती हैं। इन्द्रियों की तरह इसका स्थान भी नियत नहीं है और इसका विषय भी नियत नहीं है।

जैसे–स्पर्श इन्द्रिय का विषय नियत है–स्पर्श को ही ग्रहण करेगा। रसना इन्द्रिय का विषय नियत

है—रस को ही ग्रहण करना लेकिन मन का कोई विषय नियत नहीं है। इस कारण इसको अनिन्द्रिय कहा गया है। यह ईषत् इन्द्रिय होते हुए भी, थोड़ी इन्द्रिय है लेकिन इन्द्रियों जैसा काम नहीं करता है। कुछ लक्षण इसमें इन्द्रियों के हैं और कुछ इन्द्रियों के नहीं हैं। इन्द्रियों के लक्षण क्या है? जैसे द्रव्य—इन्द्रिय की रचना होती है वैसे ही मन—इन्द्रिय की भी रचना होती है। इसलिए यह इन्द्रिय भी कहलाता है। लेकिन इन्द्रियों की तरह इसके विषय नियत नहीं है, स्थान नियत नहीं है इसलिए यह अनिन्द्रिय भी कहलाता है। ऐसी दोनों प्रकार की परिणतियाँ होने पर यह क्या करता है? मन का विषय है—श्रुत। श्रुत अर्थात् श्रुतज्ञान। जो हमारी आत्मा में श्रुतज्ञान का क्षयोपशम होता है वह सारा का सारा क्षयोपशम मन के माध्यम से पंचेन्द्रिय जीवों में कार्य करता है।

अन्य जीवों में श्रुतज्ञान का क्षयोपशम होगा तो वह मन के बिना कार्य करेगा। लेकिन जो मन वाले हैं उनके लिए यह नियम हो जाता है कि उनके अंदर श्रुतज्ञान का क्षयोपशम मन के माध्यम से ही काम करेगा। इस अनिन्द्रिय का जो मुख्य विषय है वह श्रुतज्ञान का ही मुख्य विषय है। मतिज्ञान का भी है लेकिन उसमें मुख्यता श्रुतज्ञान की ही है। सुनकर जो हमें उपलब्ध होता है वह भी श्रुत कहलाता है। श्रुत का अर्थ है—सुनना। सुन करके जो हम मन के माध्यम से अनेक प्रकार का ज्ञान अपने अंदर अर्जित करते हैं, वह श्रुतज्ञान इसी मन का कार्य होता है।

जैसे—किसी ने कहा—'इस कमरे के बाहर जाओ वहाँ पर जाकर एक घड़ा मिलेगा। वह उठाकर ले आना।' आपने इतना सुना—'घड़े को उठाकर लाना है।' आप वहाँ गए, वहाँ जाकर आपने देखा वहाँ पर बहुत सारे घड़े रखे हुए हैं। आपने उनमें से एक घड़ा उठा लिया। कौन सा घड़ा उठाया? यह विचार जो आपके अंदर आया, वह आपके मन के माध्यम से आपके अंदर आया। किसलिए उठाना है? क्योंकि हम से कहा गया है वहाँ से घड़ा उठाकर लाओ? तो आपके मन में यह विचार आएगा कि हमसे यह घड़ा लाने के लिए इसलिए कहा गया होगा जिससे कि इस घड़े का उपयोग यहाँ पर रहने वाले लोग कर सकें। यह विचार जो आपके मन में आया वह सारा का सारा श्रुतज्ञान है। कुछ सुनने के बाद अपने आप अन्य पदार्थ की ओर हमारे विचारों का चले जाना यह मन का विषय होता है। इसलिए इस तत्त्वार्थसूत्र को जो पढ़ रहे हैं उन सभी का श्रुतज्ञान अलग—अलग काम करता है। यदि एक डॉक्टर होगा तो इन्हीं सूत्रों को सुनकर उसका दिमाग डॉक्टरी की तरफ जाएगा। एक इंजीनियर होगा उसका दिमाग इंजीनियरिंग की ओर ही जाएगा। एक बिजनेसमैन भी होगा तो उसका दिमाग उसमें जाएगा और कहेगा—हाँ, मैं भी अपने श्रुत के माध्यम से कुछ सोचकर कुछ और करने की इच्छा कर रहा हूँ। यह भी हमारा श्रुतज्ञान है। 'मैंने सोचा—कुछ और था और हमारे सोचने के माध्यम से ऐसे विचार आते चले गए और मैं यह सब करता चला गया।' यह सब किसकी परिणति है?तो यह सब श्रुतज्ञान की परिणति है। यह सारा का सारा श्रुतज्ञान सभी जीवों में अलग—अलग उनके मतिज्ञान के अनुरूप भी कार्य करता रहता है। जैसा वे देखते हैं, पढ़ते हैं, सुनते हैं उनके पास में जिस तरह की बाहरी उपलब्धियाँ होती हैं उस उपलब्धि के अनुसार वह श्रुतज्ञान भी काम करता चला जाता है। मन के विचार भी उसी रूप में आते चले जाते हैं। एक योगी होगा तो इन सूत्रों को

पढ़कर अपने योग के विषय को ढूँढ़ेगा। वह सोचेगा कैसे हम इनका उपयोग योग में कर सकेंगे? पाँच इन्द्रियों के विषय हैं। इन्द्रियाँ तो मन की माँग करती ही नहीं हैं। यह मन है जो इन इन्द्रियों के अनुकूल विषय चाहता है। एक योगी सोचेगा–'इस मन को शान्त कर दो।' इन्द्रियाँ तो शान्त ही हैं क्योंकि इन्द्रियों का संचालन मन के कारण ही हो रहा है। वह योगी मन के अंदर जो श्रुतज्ञान की परिणति चलेगी, विचारों की परिणति चलेगी–उनको रोकेगा। मन को रोकने के लिए क्या करना है?पहले इस श्रुतज्ञान की परिणति को रोकना। इसलिए कोई भी योगी होगा वह आपको योगाभ्यास कराएगा तो पहले आपको विचार–रहित करेगा। आपको सभी बाहर की चीजें छुड़ाएगा, आपको निर्विचार बनाएगा। आप सभी बाहर की चीजें छोड़े। कई बार मन उस बारे में सोचने लग जाता है। पहले आप उन चीजों को छोड़ करके बैठेंगे तो आप अपने मन को शांत और स्थिर कर पाएंगे। क्योंकि मन का जो विषय है वह अगर उसको मिलेगा तो वह तो उछलेगा। मन का विषय अगर उसको नहीं मिलेगा तो वह शान्त हो जाएगा। इस तरह से जो अपने मन को संभालने लग जाता है वह योगी हो जाता है। क्योंकि उसको मालूम है कि मन को थोड़ा खुला छोड़ा, थोड़ी–सी इसको छूट दी तो यह अपना दुरुपयोग करना शुरू कर देगा। इन्द्रियों के दुरुपयोग को संभालते रहने का नाम ही है–अपने आप से जुड़ना। यह योग की पद्धति है जो इन सब सूत्रों से ही चलती है। श्रुतज्ञान का उपयोग कम से कम करना। ज्यादा कुछ मन सोचे नहीं। जितना दिख रहा है उतना देख, जितना सुनने में आ रहा है उतना सुन, जितना परोसा जा रहा है उतना ही चख–इसके अलावा अन्य कुछ नहीं सोचना है। ऐसा जब मन की परिणति में आ जाता है तो वह मन भी शान्त हो जाता है। इसलिए अनिन्द्रिय को श्रुतज्ञान का विषय कहा है और इनका उपयोग भी योगों के सूत्रों में होता है।

आगे के सूत्र में आचार्य कह रहे हैं–"इन इन्द्रियों के स्वामी कौन–कौन होते हैं?"

स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी–

वनस्पत्यन्तानामेकम् ।। 22 ।।

अर्थ–पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय पर्यन्त जीवों की एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।

एकम् का अर्थ है–एक इन्द्रिय। एक इन्द्रिय का मतलब है–स्पर्शन इन्द्रिय। आचार्यों के सूत्र लिखने का तरीका देखो। कितने कम शब्दों में उन्होंने स्पर्शन इन्द्रिय की परिभाषा दी है। 'वनस्पत्यन्ताना' वनस्पति जिनके अंत में है वे सभी स्पर्शन इन्द्रिय वाले हैं। 'एकम्' से तात्पर्य एक इन्द्रिय वाले हैं या स्पर्शन इन्द्रिय वाले हैं। स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी कौन है? वनस्पति जिनके अंत में है। किसके अंत में वनस्पति है? यहाँ पीछे का सूत्र याद करो जिसमें वनस्पति अन्त में आई है। तेरहवें सूत्र में आया है पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः जिनके अन्त में वनस्पति है। अर्थात् पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति इन सबके लिए एक इन्द्रिय की ही उपलब्धि होती है। ये सभी स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीव हैं। आचार्यों के सूत्र लिखने के कितने अच्छे तरीके हैं जो पहले लिख दिया उसी को उन्हें

पुनः लिखने की जरूरत नहीं पड़ी। इसलिए वनस्पति जिनके अन्त में है वह एकेन्द्रिय वाले जीव हैं। आगे के सूत्र में दो इन्द्रिय आदि के स्वामी बताते हैं–

कृमि– पिपीलिका–भ्रमर–मनुष्यादीनामेकैक–वृद्धानि।।23।।

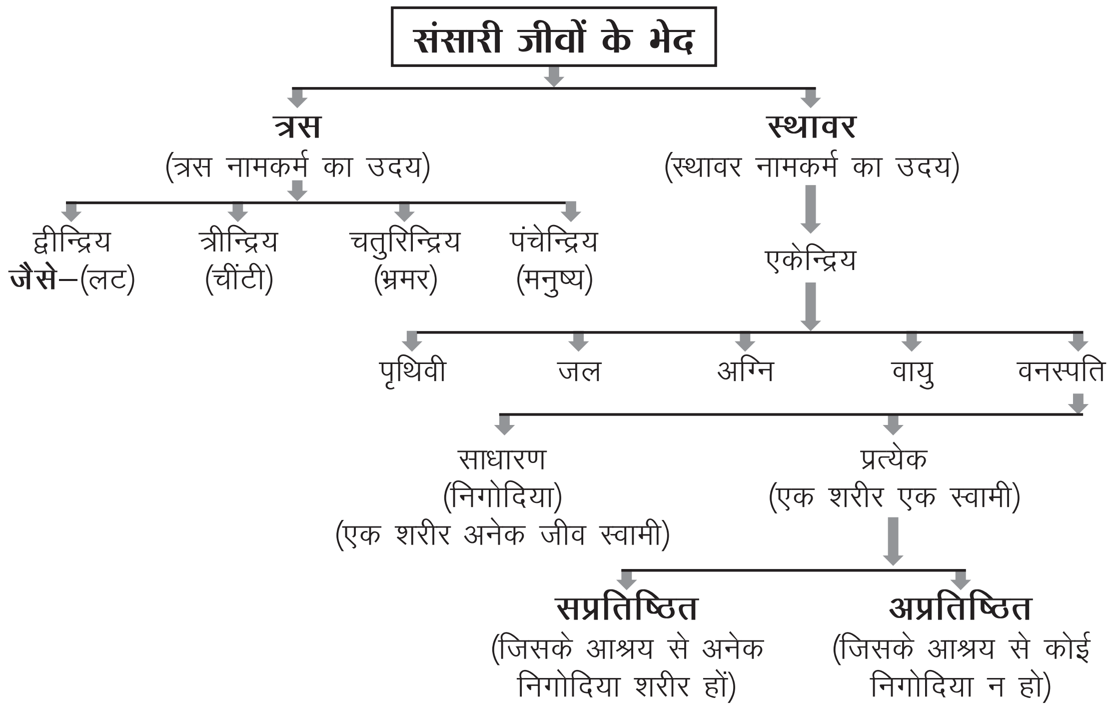

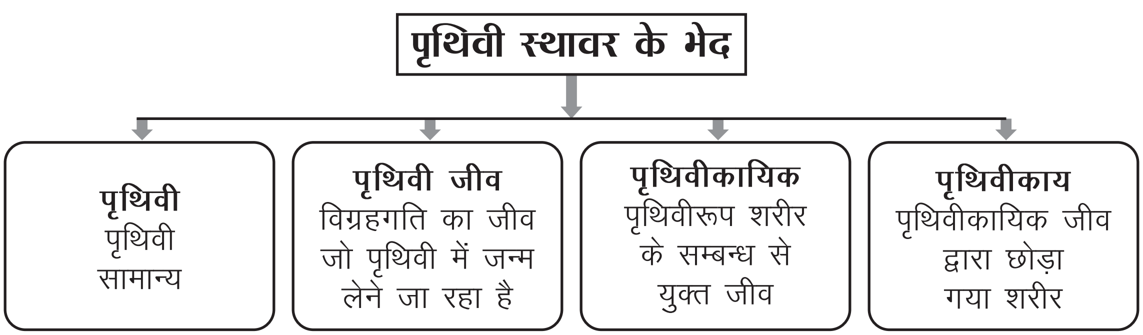

अर्थ–लट आदि, चींटी आदि, भौंरा आदि, मनुष्य आदि के क्रम से एक–एक इन्द्रिय बढ़ती हुई हैं। अर्थात् लट आदि के प्रारम्भ की दो, चींटी आदि के तीन, भौंरा आदि के चार और मनुष्य आदि के पाँच इन्द्रियाँ होती है।

अब शेष इन्द्रियों के स्वामी कौन होते हैं? तो क्रम से एक–एक उदाहरण देकर बताया गया है। क्रम से एक–एक उदाहरण लगाते जाना और एक–एक इन्द्रिय को बढ़ाते जाना। कृमि (कीड़ा) यह दो इन्द्रिय का उदाहरण हो गया, पिपीलिका अर्थात् चींटी यह तीन इन्द्रिय का उदाहरण हो गया, भ्रमर (भौंरा) यह चार इन्द्रिय का उदाहरण हो गया और मनुष्य आदि यह पाँच इन्द्रिय का उदाहरण हो गया। आदि शब्द से प्रत्येक इन्द्रियों के जो उदाहरण दिये हैं उनमें और भी जीव हैं। कृमि आदि, पिपीलिका आदि, भ्रमर आदि, मनुष्य आदि ऐसे सभी में आदि लगाना और इन सबके साथ एक–एक इन्द्रिय की वृद्धि करते चले जाना। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय मनुष्य आदि पाँच इन्द्रिय हैं। इस तरह से प्रत्येक इन्द्रिय के यहाँ पर स्वामी बताए गए हैं। अब आगे मन का विषय शुरू होगा। गति से गत्यान्तर जाने की प्रक्रिया भी शुरू होगी।

संज्ञी जीव का स्वरूप–

संज्ञिनः समनस्काः ।। 24 ।।

अर्थ–मन सहित जीवों को संज्ञी कहते हैं।

आचार्य इस सूत्र में बताते हैं मन से सहित जीवों को संज्ञी जीव कहते हैं। संज्ञी जीव किसे कहते हैं? जो मन से सहित होते हैं। जो मन से रहित होते हैं उन्हें असंज्ञी जीव कहते हैं।

संज्ञा शब्द के अर्थ

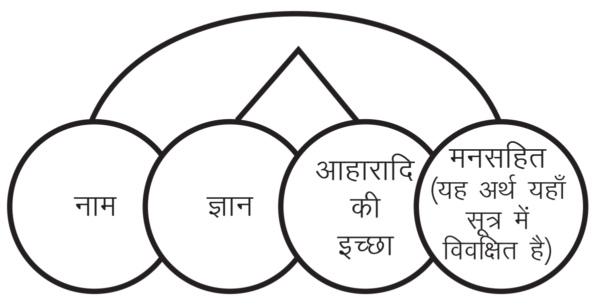

यहाँ से यह अध्याय बदल रहा है। अब इन जीवों की परिणति के बारे में बताया जाएगा। जब इन जीवों का मरण हो जाता है और मरकर वह दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। तो इनके बीच में क्या होता है? इस बात को दुनिया का कोई विज्ञान नहीं जानता। यह वीतराग विज्ञान हमें बताता है।

आगे के सूत्र में आचार्य बताते हुए कहते हैं–विग्रहगति में गमन मन बिना कैसे?

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।। 25 ।।

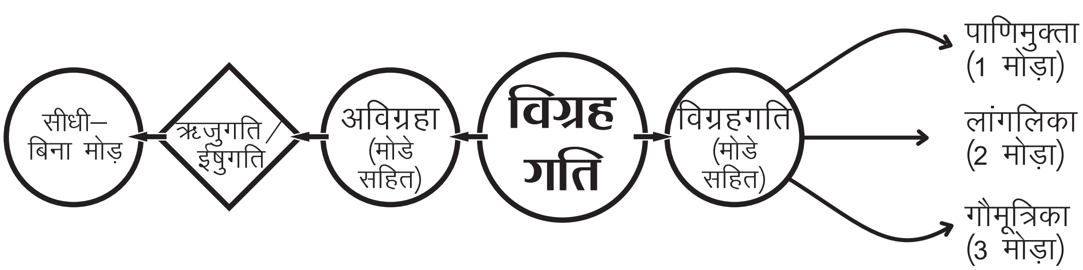

अर्थ–विग्रहगति में कार्मण काययोग होता है। उसी की सहायता से जीव एक गति से दूसरी गति में गमन करता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए गमन करना विग्रहगति है। कार्मण शरीर के द्वारा जो आत्मा के प्रदेशों में कम्पन होता है उसको कर्मयोग कहते हैं।

जो बीच की गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अर्थात् जब तक मनुष्य या कोई अन्य जीव मरकर दूसरी गति को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसके बीच की गति को विग्रहगति कहते हैं। आपने पहले चार गतियाँ पढ़ी हैं, वह तो गतियाँ हैं ही। लेकिन जो यह बीच की गति है उसे विग्रहगति कहते हैं। उस विग्रहगति में अपने पास क्या होता है? आचार्य कहते हैं वहाँ पर केवल कर्मयोग है। एक योग छठवें अध्याय में आता है–"कायवाङ् मनः कर्मयोगः" और इसमें में यही शब्द लिखा हुआ है 'कर्मयोगः' और यहाँ पर भी लिखा हुआ है कर्मयोगः। लेकिन वहाँ जो कर्मयोग लिखा हुआ है उसके साथ में कुछ और भी लिखा हुआ है। मनः, वचन और काय। कायवाङ्मनः कर्म उसके साथ में होने वाला योग यह कहलाएगा मन, वचन और काय का योग। छठवें अध्याय के प्रथम सूत्र को जब आप पढ़ेंगे तो ज्ञात होगा कि यह योग की परिभाषा है। वह योग पूरा का पूरा अपनी शारीरिक गतिविधियों और भौतिक शरीर पर निर्भर करता है। मन, वचन और काय की सारी क्रियाएं हमारे औदारिक शरीर में घटित होती हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है उसका नाम वहाँ योग कहा गया है। इसलिए वहाँ जो योग है वह अपने भौतिक शरीर से सम्बन्धित है, वह योग अपनी स्पीच, माइंड और शरीर से सम्बन्धित हैं और यहाँ जो योग कहा जा रहा है यह है कर्मयोग। कर्मयोग से तात्पर्य कर्म के माध्यम से होने वाला योग। कई बार शब्द वही रहते हैं परन्तु अलग–अलग स्थानों पर उनके अर्थ बदल जाया करते हैं। वहाँ कर्म का अर्थ हुआ–मन, वचन, काय की क्रिया और यहाँ पर कर्म का अर्थ हो गया कार्मण शरीर। हमारे अन्दर कर्म बंध हुए हैं उसका नाम यहाँ पर कर्म है। एक ही शब्द अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग अर्थ रख रहा है। वहाँ पर कर्मयोग से तात्पर्य मन, वचन, काय की क्रियाओं के नाम से हैं। यहाँ पर कहते हैं–केवल कर्मयोग। यहाँ पर मन, वचन, काय नहीं जुड़ा हुआ है। क्योंकि इस सूत्र से आपको एक अलग गति में ले जा रहे हैं जिसका नाम है–विग्रहगति। जो गति दों गतियों के बीच में है। मान लो आप मनुष्य है और मनुष्य पर्याय जब छूटेगी और आपको देव पर्याय में जाना है। अभी आप देव गति में पहुँचे नहीं हैं। जिस स्थान पर आपका जन्म होना है उस स्थान पर आप अभी नहीं पहुँचे और पूर्व स्थान को भी आपने छोड़ दिया तो बीच में आप जब तक रहेंगे उसका नाम ही विग्रहगति कहलाएगा।

इस गति में आप किसके साथ रहेंगे? आचार्य यहाँ पर कह रहे है–"कर्मयोगः" उस समय भी आप योगी रहेंगे और इस समय भी आप योगी रहेंगे। क्योंकि योग जिसके पास है वह होता है योगी। तो योग उस समय पर किसका रहेगा? कार्मण शरीर आपके साथ होगा। इसी का नाम

कर्मयोग होता है। यह जो शरीर है जिसे भौतिक शरीर कहते हैं यह तो यहीं पर छूट जाएगा और आत्मा के साथ जो जुड़ा है उस शरीर का नाम कार्मण शरीर होता है। वह आपके साथ उस बीच की स्थिति में भी रहेगा और जब तक आप उस स्थान पर नहीं पहुँच जाओगे जहाँ पर आपका जन्म होना है तब तक आपकी आत्मा के साथ जो रहेगा उसे ही कर्मयोग कहते हैं। कई लोग कहते हैं–कर्मयोगी बनो। यहाँ उनके लिए यही कहने में आ जाता है कर्म करो और फल की इच्छा मत करो, वही आपके लिए सबसे बड़ा योग है। सच्चे कर्मयोगी वही कहलाते हैं जो कर्म तो करते हैं लेकिन फल की इच्छा नहीं करते हैं। यहाँ पर जो आपके लिए कर्मयोग बताया जा रहा है वह यह बताया जा रहा है जो आपने कर्म किया है वह आपके साथ बंध गया है वही कर्म आपको आगे फल देगा। सही रूप में तो आप कर्मयोगी तब कहलाएंगे जब आप इस शरीर से भी अपना ममत्व छोड़ देंगे। यहाँ पर उसी की एक बात कही जाती है कि यहाँ पर आप कर्मयोगी कैसे हो सकते हैं? यहाँ पर भी आपको कर्म करते हुए उन कर्मों के फलों की इच्छा नहीं करना है, उन कर्मों में अपना ममत्व नहीं रखना है यही आपको यहाँ पर कर्मयोगी बनाएगा।

वास्तव में आप कर्मयोगी कब बनेंगे? आचार्य कहते हैं–'जिस समय आप विग्रहगति में होंगे उस समय केवल कर्म ही होगा और कुछ नहीं होगा।' ये जो कर्म हैं जो आत्मा से बंधे हुए हैं वही कर्म हमारे साथ रहते हैं और उनके माध्यम से आत्मा के प्रदेशों में भी स्पन्दन होता है। उन आत्मा के प्रदेशों में जो स्पन्दन हो रहा है उसी का नाम 'योग' है। वह स्पन्दन किसके कारण से हो रहा है?विग्रह गति में यह केवल कर्मों के कारण से होता है इसलिए इसका नाम कार्मणकाययोग या कर्मयोग कहलाता है। यह कर्मयोग कहाँ होगा?यह कर्मयोग केवल विग्रहगति में होगा। यहाँ पर जो आपका इस शरीर के साथ योग होगा वह मन–वचन–काय का योग कहलाएगा। इस योग के साथ में ये कर्म बंधेंगे। जब यह योग छूट जाएगा तो विग्रहगति में आपके साथ केवल कर्मयोग रह जाएगा। उस कर्मयोग में क्या होता है? तो आचार्य कहते हैं–"उस कर्मयोग में केवल कर्म वर्गणाओं का ही ग्रहण होता है।" शरीर के योग्य पुद्‌गलों का ग्रहण नहीं करना, कर्म पुद्‌गलों को ही केवल ग्रहण करना। जिससे शरीर बनता है उन पुद्‌गलों का ग्रहण विग्रहगति में नहीं होगा। उनका ग्रहण तो आपका जिस गति में जन्म होगा उस गति में होगा। बीच की उस स्थिति में केवल कर्मों का ग्रहण होता है। इसलिए इसको विग्रहगति कहा जाता है। विग्रह का अर्थ–शरीर भी होता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिए बीच में जो गति होती है उसको विग्रह कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी निकलकर आता है। तो यह गति किस रूप में होती है?

जैसे– किसी जीव को जन्म लेना है। एक कोने से दूसरे कोने में जन्म लेना है। लोक के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना है। तो क्या वह सीधे ही एक कोने से दूसरे कोने तक चला जाएगा या उसकी कोई विधि है?

आगे के सूत्र में आचार्य जीव का गमन किस प्रकार होता है? उसकी विधि बता रहे हैं–

अनुश्रेणि गतिः ।। 26 ।।

अर्थ–जीव और पुद्‌गल का गमन श्रेणी के अनुसार होता है।

लोक के मध्यभाग से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशा में क्रम से सम्बन्धित (रचना) को प्राप्त हुए आकाश प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणि कहते हैं।

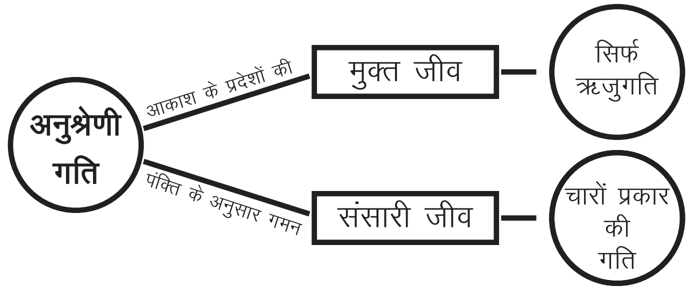

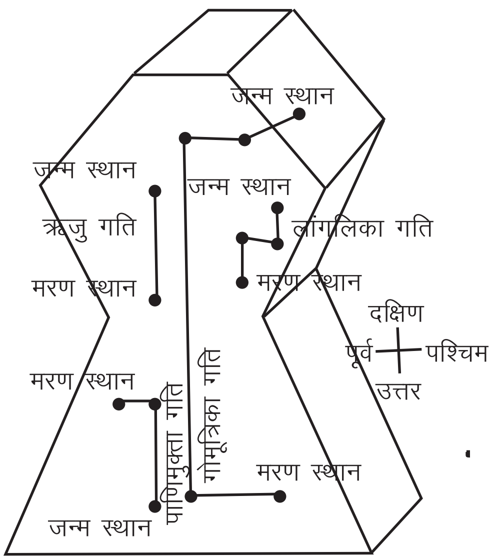

तीन मोड़ और चार समय का विशेष जानने के लिए उपर्युक्त मानचित्र का देखिए।

आचार्य कहते हैं जब भी यह जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के लिए गमन करेगा तब इस विग्रहगति में वह श्रेणी के अनुसार ही गति करेगा। अनुश्रेणि का अर्थ है–श्रेणी के अनुरूप। जो भी श्रेणियां बनी हुई हैं उसी के अनुसार उसकी गति होगी। यही कहलाती है अनुश्रेणि गति। प्रश्न उठता है वह श्रेणी कैसी बनी हुई है?यह श्रेणियां आपको दिखाई नहीं देंगी। आकाश के सभी प्रदेशों में वह श्रेणियां बनी हुई हैं। जैसे आप किसी चटाई को देखते हैं उस चटाई में दो प्रकार की लाइनें होती हैं। खड़ी लाइनें और आड़ी लाइनें होती हैं। उसी की तरह ये पूरी की पूरी श्रेणियां लम्बाई में और चौड़ाई में पूरे आकाश के प्रदेशों में बनी हुई हैं। जब भी कोई जीव अपने कर्मों के साथ गमन करता है तो वह उस श्रेणी के अनुसार ही गति करेगा। आकाश में ये श्रेणियाँ चटाई के तानों बानों की तरह होती हैं। कुछ श्रेणियाँ Horizontal (सीधी) लाइन में होती है और कुछ श्रेणियाँ Vertical (खड़ी) लाइन में होती हैं।

जिंदगी में आप भले ही लाइन से न चलो अर्थात् लाइन पर न चलो लेकिन मरने के बाद सब लाइन पर चलते हैं। मरने के बाद प्रत्येक प्राणी की गति इन कर्मों के अनुसार ही चलती है। यह प्रकृति का नियम है। एक लाइन में अनन्त–अनन्त जीव भी फँसे होंगे। 343 घन प्रमाण जो तीन लोक का घनफल है उसमें जो चौदह राजू ऊँचाई को लिए हुए लोक की ऊँचाई है उनमें जितनी भी श्रेणियाँ बनी हुई हैं उन सब श्रेणियों में जीवों का सात–सात राजू की लम्बी–चौड़ी पंक्ति में गमन प्रत्येक समय चल रहा है। अनन्त–अनन्त जीवों का हर क्षण जन्म और मरण हो रहा है और प्रति क्षण इन श्रेणियों में इनका गमन हो रहा है। बीच में जो गति आती है उस विग्रहगति में कितना समय

लगता है यह भी आगे बताया जाएगा। यहाँ आचार्य यह बता रहे हैं कि इस जीव की भी अनुश्रेणि गति होती है और पुद्गलों की भी अनुश्रेणि गति होती है। कुछ पुद्गल परमाणु ऐसे होते हैं जो बिल्कुल श्रेणी के अनुसार चलते हैं। यहाँ से निकले शब्द परमाणु भी हो सकते हैं या अन्य परमाणु भी हो सकते हैं। यहाँ से निकलकर वह एक साथ एक समय में ही चौदह राजू की दूरी तय कर सकते हैं। यह गति जीव और पुद्गल दोनों की हो सकती है। यह गति तो उनकी होगी जो जीव कर्म से सहित होकर विग्रह गति में चल रहे हैं उन्हीं की होगी और पुद्गल परमाणुओं की होगी। अन्य जो जीव हैं, जो शरीर सहित हैं जिनको हम पकड़ सकते हैं अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं, स्वयं चल सकते हैं तो वह जीव बिना श्रेणी के भी गमन करते हैं। जैसे कि–आप और हम अगर गमन करेंगे तो श्रेणी के अनुसार नहीं करेंगे। हम बिना श्रेणी के भी गमन कर सकते हैं। इस औदारिक शरीर के साथ सीधे भी गमन कर सकते हैं। यह श्रेणी से रहित गति कहलाएगी। कहने का तात्पर्य है जो जीव संसार में इस शरीर के साथ है वह तो बिना श्रेणी गति कर सकते हैं लेकिन जब कार्मण शरीर के साथ रह जाओगे तो उस समय तो केवल अनुश्रेणि गति ही होगी। इसी तरह से जो पुद्गल स्कन्ध के रूप में हैं उन्हें हम कहीं से कहीं भी फेंक सकते हैं, उन्हें तिरछी दिशा में कहीं पर भी पहुँचा सकते हैं, उनकी गति भी विश्रेणी गति हो जाएगी लेकिन जो पुद्गल के कुछ विशिष्ट परमाणु ही होते हैं उनकी जो गति होगी वह केवल अनुश्रेणि गति ही होगी। इस तरह से अनुश्रेणि गति जीव और पुद्गल दोनों की ही होती है।

आगे के सूत्र में आचार्य मुक्त जीवों की गति बता रहे हैं–

अविग्रहा जीवस्य।।27।।

अर्थ–मुक्त जीव की गति वक्रता रहित सीधी होती है। विग्रह के दो भेद–जिसमें मुड़ना पड़े वह विग्रहवती, जिसमें मुड़ना ना पड़े वह अविग्रहा गति।

जीव की गति के विषय में बताया जा रहा है। विग्रहा का अर्थ है–जिनके लिए मोड़ा लेना पड़ता है तो उनके लिए कहेंगे विग्रह वाली गति और जिनको कोई मोड़ नहीं लेना पड़ता उनके लिए कहेंगे विग्रह से रहित गति अर्थात् अविग्रह गति। यहाँ पर यह बताया जा रहा है– जीवों की विग्रह से रहित गति भी होती है। वह गति संसारी और मुक्त दोनों जीवों की हो सकती है। विग्रह वाली जो गति होगी वह तो नियम से संसारी जीवों की ही होगी। संसारी जीव दोनों प्रकार की गति कर सकते हैं–विग्रह से सहित भी और विग्रह से रहित भी। लेकिन मुक्त जीवों की जो गति होगी वह विग्रह से रहित ही होगी। वह अविग्रह गति ही कहलाएगी। इसलिए यह सूत्र मुख्य रूप से मुक्त जीवों के लिए आया है। उनके लिए नियम बनाने के लिए आया है –"अविग्रहा जीवस्य"। यहाँ संसारी जीवों का वर्णन चल रहा था। इस सूत्र में जीव का अर्थ हुआ जो जीव मुक्त हो गए है उनकी जो गति होगी वह अविग्रह गति ही होगी। जैसे–सिद्ध जीव हैं। वह कभी मोड़ा लेकर गमन नहीं करेंगे। जिस स्थान से उनका सिद्धत्व हुआ है वहीं से सीधे उसी श्रेणी में उनकी आत्मा गमन करके सिद्ध लोक के अग्रभाग

पर विराजमान हो जाएगी। उनके लिए यह सूत्र आया है कि मुक्त जीवों की गति विग्रह से रहित होती है।

इसका अर्थ यह भी समझ सकते हैं कि जीव केवल जीव ही रह जाएँ, जिसमें कोई कर्म न रहें। ऐसे कर्म से रहित जीवों के लिए यहाँ पर जीव कहा गया है। दूसरा अर्थ इसका यह भी ले सकते हैं कि आगे आने वाले जो संसारी जीव हैं उनसे भी इसका सम्बन्ध रख सकते हैं। क्योंकि अविग्रह वाली गति संसारी जीवों की भी होती है और मुक्त जीवों की भी होती है। मुक्त जीवों की तो नियम से होगी लेकिन संसारी जीवों की हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। अगर होती है तो एक समय में ही उस जीव का वहाँ जन्म हो जाएगा? उस गति को हम ऋजु गति कहेंगे।

इससे हम समझ सकते हैं कि ऋजु का अर्थ होता है–बाण या सीधा। जैसे हम किसी बाण को छोड़ते हैं तो वह सीधा जाता है और उसकी जो गति होती है उसमें कोई मोड़ा नहीं होता है। इसी तरह से संसारी जीवों की भी ऐसी गति होती है जिसमें वह सीधे जाकर उत्पन्न हो जाते हैं। एक समय में ही उनका वहाँ पर जन्म हो जाता है। अर्थात् यहाँ पर मरण हुआ और अगले ही समय में उसका जन्म हो गया। एक समय की उस गति को ऋजु गति या अविग्रहा गति कह सकते हैं। बीच में कोई समय में अंतर नहीं आया। दूसरी होती है विग्रहगति जिसमें हमें कोई मोड़ा लेना पड़े।

आचार्य यह बताने वाले हैं कि हम किस गति में कितने मोड़ा ले सकते हैं–

संसारी जीवों की गति व समय–

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।।28।।

अर्थ–संसारी जीव की गति चार समय से पहले पहले विग्रहवती और अविग्रहवती दोनों प्रकार की होती है।

सूत्र में जो "च" शब्द यहाँ पर आया है वह यह बताने के लिए आया है कि पूर्व सूत्र से आप अविग्रह का भी सम्बन्ध जोड़ लेना क्योंकि संसारी जीवों की अविग्रह वाली भी गति होती है। इसलिए पहले का जो सूत्र है वह मुख्य रूप से मुक्त जीवों के लिए हो गया। संसारी जीवों के लिए भी अविग्रह होगा इसके लिए यहाँ 'च' शब्द से ग्रहण कर लेना। विग्रह वाली जो गति होगी उसके लिए यह नियम बनाया जा रहा है। 'प्राक्चतुर्भ्यः' अर्थात् चार समय से पहले, प्राक् का अर्थ है–पहले की गति होगी। चार समय का उल्लंघन नहीं होगा। चौथे समय में तो यह जीव आगामी गति में जन्म ले ही लेगा। विग्रह वाली जो गति होगी वह चार समय से पहले–पहले ही पूर्ण हो जाएगी। उस गति में तीन प्रकार की गतियाँ हो जाती हैं। एक मोड़े वाली गति, दो मोड़े वाली गति और तीन मोड़े वाली गति। एक मोड़े वाली गति का अर्थ है जिसमें एक मोड़ा लेना पड़े। तो उसमें क्या होगा? उसमें कोई भी जीव यहाँ से ऊपर गया एक मोड़ा लिया तो बीच का जो कोण बना वह एक मोड़ा हो गया। उस एक मोड़े वाली गति में दूसरे समय में इस जीव का वहाँ पर जन्म हो जाएगा। एक समय यह विग्रह गति में रहा–इसे ऐसा कह सकते हैं। इस गति को पाणीमुक्ता गति कहते हैं। पाणीमुक्ता गति का

अर्थ है—पाणी का अर्थ है हाथ और मुक्ता का अर्थ है मोती। आप अपने हाथ में मोती रखें हैं और जब वह मोती गिरेगा तो एक मोड़ या टर्न लेकर वह नीचे गिर जाएगा। इस गति को एक मोड़ा वाली गति कहेंगे इसको समझाने के लिए यहाँ पर पाणीमुक्ता का उदाहरण दिया गया है।

दूसरी गति को लांगलिका गति कहते हैं। लांगल हल को कहते हैं। उसमें दो मोड़ बन जाते हैं। इसलिए इसका नाम लांगलिका गति रखा गया है। कुछ जीव ऐसे होते हैं जो दो मोड़े लेकर जन्म लेंगे तो उनकी गति लांगालिका गति कहलाएगी।

कुछ जीव ऐसे भी होते हैं जो तीन मोड़ लेकर जन्म लेते हैं। उनकी गति को गोमूत्रिका गति कहते हैं। गाय जब मूत्र करते हुए चली जाती है तो मूत्र का मोड़ बनता चला जाता है। जिसे तीन मोड़ा वाली गति कहते हैं।

इस तरह से विग्रह वाली गति तीन प्रकार की हो जाती हैं। पहली गति में एक मोड़ा होगा, दूसरी गति में दो मोड़े होंगे और तीसरी गति में तीन मोड़े होंगे। चौथे समय में तो उस जीव का कहीं न कहीं जन्म हो ही जाएगा। इसलिए यहाँ कहा गया है कि गति चार समय से पहले—पहले ही होती है।

आगे के सूत्र में आचार्य अविग्रहवती का समय बता रहे हैं—

एकसमयाऽविग्रहा ।। 29 ।।

अर्थ—मोड़ा रहित (अविग्रहवती) एक समय मात्र की होती है। इसी को ऋजुगति भी कहते हैं।

यहाँ पर यह बताया जा रहा है किस गति में कितना समय लगता है? जो अविग्रह वाली गति है वह तो एक समय की हो गई। उसमें तो एक ही समय लगा और उस एक समय में वह जीव बीच में विग्रहगति में नहीं रहने के कारण वह आहारक ही कहलाएगा। यहाँ एक शब्दावली और समझें—एक आहारक होता है और दूसरा अनाहारक होता है। यहाँ आगे के सूत्र में अनाहारक शब्द आने वाला है तो उससे पहले आहारक को समझ लेना चाहिए। आहारक का अर्थ है—जब यह आत्मा शरीर के योग्य नौ—कर्म पुद्गलों को ग्रहण करेगा तो वह आहारक कहलाएगा। जिस समय यह शरीर के योग्य नौकर्म पुद्गलों को ग्रहण नहीं करेगा तब यह अनाहारक कहलाएगा। जब यह शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करेगा चाहे वह औदारिक हो, वैक्रियक शरीर हो, आहारक शरीर हो, छह प्रकार की पर्याप्तियां होती हैं उनके योग्य पुद्गल वर्गणाएं होती है उन सभी को यह ग्रहण करता है। जब यह तीन शरीर, छह प्रकार की पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करेगा तब यह आहारक कहलाएगा। जब यह ग्रहण करना छोड़ देगा केवल कर्म परमाणुओं को ही ग्रहण करेगा तब यह अनाहारक कहलाएगा।

उपवास करने वालों को यह विशेष रूप से समझना चाहिए कि हम इस समय आहार तो नहीं कर रहे हैं लेकिन सिद्धान्त की दृष्टि से हम अनाहारक भी नहीं हैं। उपवास में अनाहार तो है अर्थात्

बिना आहार के उपवास तो हैं लेकिन हम सिद्धान्त की दृष्टि से अनाहारक नहीं हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से अनाहारक होने का तात्पर्य ही है–शरीर को छोड़ देना और आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं होना, तब यह जीव (आत्मा) अनाहारक होगा। जिस समय वह किसी भी प्रकार की पुद्‌गल वर्गणाओं को ग्रहण न करे उस समय यह जीव अनाहारक होगा। आपके शरीर का पोषण प्रतिपल चल रहा है। आपका शरीर आपकी आत्मा के माध्यम से पुष्ट हो रहा है चाहे आप आहार करें अथवा न करें। आप अपने मन, वचन, काय के योगों के माध्यम से पुद्‌गल वर्गणाओं को ग्रहण कर रहे हैं। आत्मा अपने योग्य पुद्‌गल वर्गणाओं को ही ग्रहण करके स्थिर हैं। इसलिए जो उपवास करते हैं उनका आहार प्रतिपल चल रहा है। इस तरह आहार भी दो प्रकार का हो जाता है। एक तो वह आहार जो हम इन आहार वर्गणाओं के पोषण के लिए देते हैं जिसे कवलाहार कहते हैं। दूसरा वह आहार जो इसके बिना भी चलता रहता है। जैसे–पंखा चल रहा हैं थोड़ी सी ठंडक हो गई। हमारा शरीर स्वयं ही कहेगा कोई फर्क नहीं पड़ता एक या दो उपवास करने से। क्या हो गया?शरीर तो वही है लेकिन जब थोड़ी सी गर्मी बढ़ गई तो हमारे मन में ऐसा भाव आ जाता है– 'अरे गर्मी हो रही है। कैसे करूँगा?' लेकिन जैसे ही वातावरण में ठंडक हो जाती है, बारिश हो जाती है फिर तो आप एक, दो, तीन, चार, पाँच तक उपवास करते चले जाएंगे। आखिर क्यों? क्योंकि उसमें आपके शरीर के पोषण की मात्रा बढ़ जाती है। आपके शरीर में मुख्य रूप से जल की आवश्यकता होती है और जब वह जलीय तत्व आपको वातावरण से मिल जाते हैं तो आपका शरीर स्वयं ही पुष्ट बना रहता है। आपको उस समय पर न ज्यादा भूख लगती है न ज्यादा प्यास लगती है और कोई परेशानी भी नहीं होती है जिससे आपका शरीर अपने आप उपवास आदि करता चला जाता है। उस समय भी आपका पोषण तो चल रहा है। लेकिन भोजन करने से क्या हो जाता है? भोजन करने से जो शरीर के रूप में मशीन चल रही है उसमें और अधिक क्षमता आ जाती है। यदि भीतर से हम और अधिक क्षमता न डालें, जैसे–गाड़ी में तेल डालना पड़ता है। गाड़ी में तेल नहीं है तो उसकी गति नहीं होगी। यदि पेट्रोल पूरा हैं तो उसकी गति पूरी होगी। इसी तरह से शरीर रूपी गाड़ी में पेट्रोल नहीं होने पर भी आपकी गाड़ी चलती तो रहेगी लेकिन उसमें जो वर्गणाएं आएंगी उन वर्गणाओं को ग्रहण करने की जो क्षमता है उस क्षमता में थोड़ी–सी कमी आ जाएगी।

जैसे ही आपने पानी पिया और भोजन इत्यादि किया तो वह योग पुनः प्रारम्भ हो जाएंगे। इसलिए लोग पानी से भी महीने–महीने तक जीवित रह जाते हैं। मन्दसौर में एक सज्जन ने मात्र पानी पीकर 32 उपवास किये थे। पानी में भी इतनी क्षमता रहती है कि हम इतने लम्बे समय तक भी जीवित रह सकते हैं। क्योंकि पानी से ही हमारा शरीर बहुत कुछ चलता है। उसी के माध्यम से ही इन पुद्‌गल वर्गणाओं का ग्रहण हो जाता है। इसलिए आप यह भी इस सिद्धान्त ग्रन्थ को पढ़कर समझ लेना कि कोई बात नहीं, हम कवलाहार नहीं कर रहे तो क्या हुआ, हमारा आहार तो चल ही रहा है। इसलिए प्रत्येक जीव जैसे ही उसका जन्म हुआ वह उस समय से लेकर पूरी आयु पर्यन्त आहारक ही रहता है, अनाहारक होता ही नहीं है। चाहे वह सो जाए, चाहे बेहोश हो जाए या उसे

कुछ भी हो जाए। जब तक इस आत्मा ने शरीर से सम्बन्ध नहीं छोड़ा है तब तक वह आहारक ही रहेगा। इसलिए यहाँ पर कहा गया है 'अविग्रहा' अर्थात् विग्रह से रहित जो गति होगी वह एक समय की होगी और एक समय की अवधि में तो यह जीव आहारक ही बना रहेगा।

यह जीव अनाहारक कैसे होगा?उसके लिए आचार्य विग्रहगति में आहारक–अनाहारक व्यवस्था के विषय में कहते हैं–

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ।। 30 ।।

अर्थ–विग्रहगति में जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है।

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर तथा छः पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं। शरीर योग्य पुद्गलों के ग्रहण न करने को अनाहार कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि एक समय के लिए अथवा दो समय या तीन समय के लिए यह जीव अनाहारक हो सकता है। जब एक गति को छोड़कर दूसरी गति में जाना होता है तो तीन समय से अधिक जीव के लिए अनाहारक की दशा नहीं बनती है। जैसे ही उसका अगली योनि में जन्म हुआ तब उसके आहार वर्गणाओं का ग्रहण हुआ और आहार लेना शुरू हो जाता है। समय क्या होता है? समय का मतलब जैन दर्शन में कहा गया है 'The Smallest Unit of Time' अर्थात् जिससे छोटा और कोई समय नहीं हो सकता उसी का नाम समय है। सैंकिण्ड का मतलब समय नहीं है। सैकिण्ड के कई नैनो सैकिण्ड हो जाते हैं। जिस क्षण का और कोई अंतिम टुकड़ा नहीं हो सकता उसका नाम ही समय है। एक समय तक, दो समय और तीन समय तक ही यह जीव अनाहारक रहेगा तत्पश्चात् वह जीव आहारक हो जाएगा। आप को जो विग्रह वाली गति बताई गई है उसमें जो पाणीमुक्ता वाली गति थी उसका नियम यह है कि पाणीमुक्ता वाली गति में जब यह जीव एक मोड़ लेगा तो एक समय तो वह जीव अनाहारक होगा और दूसरे समय में वह आहारक हो जाएगा। दो मोड़े वाली गति हो तो दो समय वह अनाहारक रहेगा, तीसरे समय में वह आहारक हो जाएगा। तीन मोड़े वाली गति होगी तो तीन समय तक वह अनाहारक रहेगा, चौथे समय में वह आहारक हो ही जाएगा। यह सिद्धान्त है, इसलिए तीन समय से ज्यादा कोई जीव अनाहारक नहीं रहता। क्योंकि वह किसी न किसी स्थान पर जन्म लेकर शरीर को ग्रहण कर लेता है। इस आत्मा को नया शरीर धारण करने में अधिक से अधिक तीन समय ही लगते हैं। जैन सिद्धान्तों को पढ़ने के बाद भी लोग ऐसी–ऐसी बातें करते हैं कि हमारी पिताजी की आत्मा भटक रही है, हमारी दादी की आत्मा भटक रही है, उनकी आत्मा हमें परेशान कर रही है। ऐसी व्यर्थ की बातें सिर्फ उन्हें आती है जिन्होंने या तो जैनदर्शन को पढ़ा नहीं है या उन्हें इस पर विश्वास नहीं है। आचार्य कहते हैं किसी की आत्मा कैसे भटक सकती है जब उसे अधिक से अधिक तीन समय तो दूसरा शरीर ग्रहण करने में लगता है। वह भी उनके लिए जो एकेन्द्रियादि जीव है जिन्हें लोक के एकभाग से दूसरे भाग में जाने में एक या दो समय ही लगते हैं। एक समय या दो समय में ही दूसरा जन्म हो जाता है। आत्मा को तो भटकना कहीं है ही नहीं। इसलिए अपनी सोच

को बदल लेना कि हमारे दादा की, दादी की आत्मा भटक–भटककर हमें परेशान करती है। कुछ भी हो जाए चाहे एक्सीडेंट हो जाए, भूकम्प आ जाए या बाढ़ में बह जाए, चाहे कुछ भी हो जाए, आत्मा ने जैसे ही इस शरीर को छोड़ा अगले ही समय वह दूसरा जन्म ले लेता है।

हाँ! ऐसा जरूर हो सकता है कि वह व्यन्तर देव बन गया और देवगति में उसका जन्म हो गया तो व्यन्तर बनकर वह आपको परेशान कर सकता है। लेकिन यह बात अलग है, आप कम से कम इतना श्रद्धान तो करो कि हो सकता है हमारे दादा जी व्यन्तर देव बन गए हों। यह तो कोई नहीं कहेगा, क्योंकि ऐसा कहने से हमारी इज्जत कम हो जाएगी। वह व्यन्तर बन जाएगा या भूत जाति का देव बन जाएगा और देव बनकर आपको परेशान करने लग जाएगा। जो इच्छा उसकी आपके साथ रहकर पूरी नहीं हुई वह उनका बदला लेने के लिए आ सकता है। लेकिन आप यह मत समझना कि उसकी आत्मा भटक रही है। वह आपको किसी भी प्रकार की काया दिखा सकता है, आपको डरा सकता है। वह आपको किसी भी रूप में परेशान कर रहा हो तो आप यही समझें कि वह व्यंतर जाति के देव बन गए हैं। उनकी अपनी उम्र है, उन देवों की अच्छी आयु है, अच्छा शरीर होता है। जो रूप वह आपको दिखाएंगे, डराएंगे वह केवल आपको परेशान करने के लिए बनाएंगे। उनका स्वयं का शरीर तो बहुत सुंदर होता है जिससे वह अपनी देवांगनाओं के साथ आनन्द लेते हैं। इस तरह के सही ज्ञान से हम यह जान लें कि कोई भी आत्मा तीन समय से अधिक बीच की गति में रहता ही नहीं है। दो समय या तीन समय बाद यह नियम से आहारक हो जाता है। किसी न किसी शरीर को ग्रहण करके आहार वर्गणाओं को ग्रहण करने लग जाता है।

आगे के सूत्र में आचार्य जन्म के भेद कहते हैं–

सम्मूर्छन–गर्भोपपादा जन्म।।31।।

अर्थ–सम्मर्छून, गर्भ और उपपाद के भेद से जन्म तीन प्रकार का होता है।

आचार्य कहते है–जन्म तीन प्रकार के होते हैं। पिछले सूत्र में बताया था कि एक गति से दूसरी गति में यह आत्मा चली जाती है। इस सूत्र में बताया जा रहा है–किस गति के जीवों का जन्म किस तरह का होता है?देवों के जन्म अलग होते हैं, मनुष्यों के जन्म अलग होते हैं और तिर्यंचों के जन्म अलग होते हैं।

पहला **'सम्मूर्छन जन्म'**–सम्मूर्छन जन्म जिन जीवों का होता है वह जीव तिर्यंच गति के जीव होते हैं। सम्मूर्छन जन्म जिन जीवों का होता है, उनकी आत्मा कहीं भी पहुँचकर उस स्थान सम्बन्धी वर्गणाओं को ग्रहण करके अपना शरीर बना लेती है। पुद्गल वर्गणाएं सम्पूर्ण लोक में फैली हुई हैं। उनको वह वहीं जाकर ग्रहण कर लेती है उसका नाम है सम्मूर्छन जन्म। अर्थात् चारों ओर से पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण कर लेना, इसी का नाम सम्मूर्छन जन्म होता है। इस जन्म में किसी के लिए किसी भी संयोग की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

दूसरा **गर्भजन्म** होता है। आप जानते हैं कि मनुष्य और पंचेन्द्रियों जीवों का गर्भजन्म होता है। जिसमें शुक्र और शोणित इन दोनों चीजों के सम्मिश्रण की आवश्यकता पड़ती है उस जन्म को गर्भजन्म कहते है। इसमें संयोग की आवश्यकता पड़ेगी। उन जीवों के जन्म को गर्भजन्म कहते हैं।

तीसरा **उपपाद जन्म** होता है। यह जन्म उपपाद शय्याओं पर स्वतः ही हो जाता है। जीव उस उपपाद शय्या पर पहुँचा और एक अर्न्तमुहूर्त में वहाँ अपने आप उसका पूरा शरीर बनकर तैयार हो जाएगा। उसका यह शरीर असंख्यात वर्षों तक जैसा का तैसा बना रहता है। युवावस्था के रूप में एक अन्तमुहूर्त के अंदर उसका पूर्ण शरीर बनकर तैयार हो जाता है। उपपाद जन्म लेने वाले देव और नारकी जीव होते हैं।

आचार्य जी ने जन्म के तीन भेद करके यह बताया कि जन्म एक ही प्रकार का नहीं होता है। जन्म तीन प्रकार के होते हैं।

आगे के सूत्र में आचार्य योनियों के भेद बताते हुए कहते हैं—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।। 32 ।।

अर्थ—सचित्त, शीत, संवृत (ढकी हुई) अचित, उष्ण, विवृत (खुली हुई) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण संवृतविवृत (कुछ ढकी व कुछ खुली हुई) ये सम्मूर्छनादि जन्मों की नौ योनियाँ हैं।

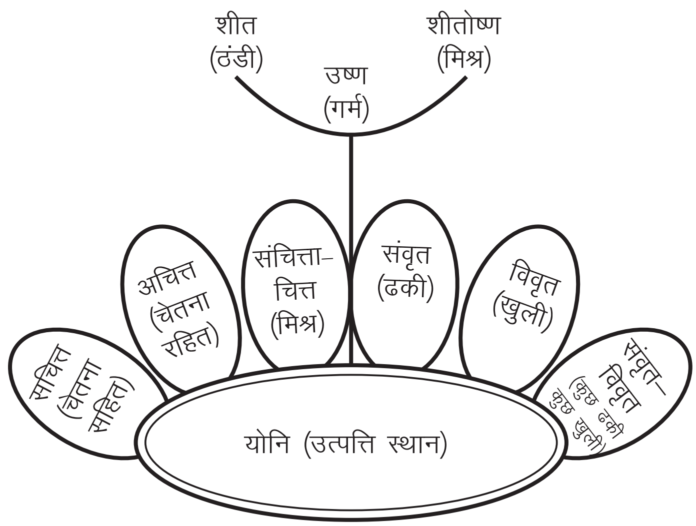

इस सूत्र में योनि स्थान बताए जा रहे हैं जहाँ पर इन जीवों का जन्म होता है। उन योनियों की कुछ विशेषताएँ हैं जो यहाँ बताई जा रही हैं। कुछ योनियां सचित्त होती है, कुछ शीत होती है अर्थात् शीत स्पर्श वाली होती हैं, संवृत अर्थात् ढकी हुई होती हैं, सेतरा का अर्थ है विपरीत। अर्थात् 'सचित्त' के विपरीत कुछ योनि अचित्त होती हैं, कुछ शीत के विपरीत उष्ण होती हैं, कुछ संवृत की उल्टी विवृत होती हैं अर्थात खुली हुई होती हैं, कुछ इन तीनों की मिश्रित भी होती हैं। वह मिश्रण एकशः अर्थात् क्रम से होता है। जो इस प्रकार है—सचित्त—अचित्त, शीत—उष्ण और संवृत—विवृत। इस तरह इन योनियों के मुख्य रूप से नौ भेद हो जाते हैं।—सचित्त, अचित्त, शीत, उष्ण, संवृत, विवृत, सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत।

अब किन जीवों के कौन से योनिस्थान होते हैं यह भी आचार्य बताने जा रहे हैं। जैसे–देवों व नारकियों के योनिस्थान अचित्त होते हैं। गर्भज जन्म वाले जितने भी जीव होते हैं वे सभी मिश्र योनि वाले होते हैं। ऐसे ही कुछ उपपाद शय्याओं पर शीत योनि होती है, कहीं पर उष्ण योनि होती है और कहीं पर मिश्र होती है। इस तरह देव नारकियों के कुछ उपपाद शीत होते हैं और कुछ उष्ण होते हैं। इसी तरह संवृत और विवृत के विषय में भी आचार्य कहते हैं कि कुछ संवृत योनि वाले जीव और कुछ विवृत योनि वाले जीव होते हैं। जितने भी विकलेन्द्रिय जीव होंगे वे सभी विवृत योनि वाले ही होते हैं। विकलेन्द्रिय का अर्थ है–दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय वाले जीव। देव, नारकी और एकेन्द्रिय जो जीव होते हैं वे संवृत योनि वाले होते हैं। आपने पढ़ा होगा कि चौरासी लाख योनियां होती है। इनके अतिरिक्त, अन्य योनियों का वर्णन आता है जिसमें मनुष्यादि जीवों का जन्म होता है। उन योनियों के आकार के माध्यम से यह निश्चित किया जाता है इसमें यह गर्भ ठहरेगा अथवा नहीं ठहरेगा। उनके लिए भी आचार्यों ने लिखा है–तीन प्रकार की योनि वाले जीव होते हैं। पहली है संखावर्त योनि, दूसरी कूर्मोन्नत योनि और तीसरी वंशपत्र योनि। जो संखावर्त योनि होती है उसमें कभी भी गर्भ नहीं ठहरता हैं, यह उसका स्वभाव है। अगर किसी को इस तरह की योनि प्राप्त हुई है तो जीव वहाँ नहीं ठहरेगा और पतन को प्राप्त हो जाएगा।

कूर्मोन्नत योनि के लिए आचार्य कहते हैं जो महापुरुष, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि होते हैं उनका इस योनि में जन्म होता है।

वंशपत्र योनि एक सामान्य योनि है।

इस तरह से इन योनिस्थानों से भी जीवों की विशेषताएं बन जाती हैं। कौन सा जीव किस योनि में जन्म लेगा। इसके भेद–प्रभेद अन्य शास्त्रों से ग्रहण कर लेना। आचार्य कहते हैं गर्भ जन्म के भी बहुत से भेद हैं। अभी तो जन्म के भेद हुए–गर्भ, सम्मूर्छन और उपपाद।

गर्भजन्म किसके होता है?आगे के सूत्र में बताया जा रहा है–

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः।।33।।

अर्थ–जरायुज (जैसे मनुष्य), अण्डज (अण्डे से उत्पन्न होने वाला) तथा पोत (जो पैदा होते ही परिपूर्ण शरीर युक्त हो, चलने फिरने लग जावे और जिन पर गर्भ में कोई आवरण नहीं होता) इन जीवों के ही गर्भ जन्म होता है।

गर्भजन्म भी तीन प्रकार का होता है। एक कहलाता है जरायुज, दूसरा अण्डज और तीसरा पोत कहलाता है। तीन प्रकार के ही ये गर्भों के जन्म कहलाएंगे। ये सम्मूर्छन जन्म नहीं कहलाएंगे।

पहला **जरायुज जन्म**–मनुष्य और तिर्यंचों का होता है। इनका जन्म होने के बाद इनके शरीर पर एक झिल्ली जैसी माँस इत्यादि की एक पर्त लिपटी हुई होती है। गाय आदि के बच्चों को जब

आप देखोगे तो उनके शरीर पर इसी तरह की पर्त लिपटी हुई होती है। यह जरायु कहलाता है अर्थात् जरायु से लिपटा हुआ जो जीव है वह कहलाता है जरायुज–जन्म वाला जीव। जिसमें उनके ऊपर माँस खून आदि का आवरण पड़ा हुआ होता है। उसको साफ किया जाता है तब वह बच्चा हिलने–डुलने लायक या कुछ करने लायक होता है। जिन जीवों का जन्म इस प्रकार से हो उन्हें जरायुज–गर्भ–जन्म वाले जीव कहते हैं। यह हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

दूसरा **अण्डज जन्म** होता है। मुर्गे, कबूतर आदि के जीव अण्डों में उत्पन्न होते हैं। जो जीव अण्डों में से जन्म लेकर निकल रहे हैं वो भी गर्भजन्म वाले ही जीव हैं। क्योंकि गर्भ में ही उनका अण्डा बना है। उनका सम्मूर्छन जन्म नहीं है। सम्मूर्छन जन्म वाले जीवों के जो अण्डे होंगे वे अलग होंगे। जैसे–आप कभी–कभी देखोंगे चींटी अपने अण्डे ले जाती है तो उनका जन्म गर्भज या अण्डज जन्म नहीं कहलाएगा। वह उसके सम्मूर्छन जन्म का ही परिणाम है। आपको लगेगा अण्डज जन्म हो रहा है लेकिन वह वस्तुतः उसके आस–पास बना हुआ एक वातावरण होता है। उसमें किसी भी प्रकार का गर्भज की सूचना देने वाला कोई लक्षण नहीं है। उनका जन्म सम्मूर्छन जन्म कहलाएगा। अण्डों से जिनका जन्म होगा उसे अण्डज–गर्भ–जन्म कहेंगे।

तीसरा **पोत-जन्म** होता है। पोत जन्म से तात्पर्य होता है–कुछ जानवर ऐसे होते हैं जिनके बच्चे जन्म लेते ही उछल–कूद करने लग जाते हैं। सिंह, हिरण आदि के बच्चे ऐसे ही होते हैं, ऐसा सुनने में आता है। जन्म लेने के तुरन्त बाद ही ये बच्चे कूदने लग जाते हैं इनके ऊपर जरायु का कोई आवरण नहीं होता है। ऐसे जीवों को पोत जन्म वाले जीव कहते हैं। ये भी गर्भज जन्म वाले ही होते हैं।

उपपाद जन्म किसके होता हैं? आचार्य बताते हैं–

देवनारकाणामुपपादः।।34।।

अर्थ–देव और नारकियों के उपपाद–जन्म होता है।

आचार्य कहते हैं–देव और नारकियों के जन्म को उपपाद–जन्म कहते हैं। मनुष्यों का जन्म उपपाद–जन्म नहीं होता है। चाहे विज्ञान कितने भी टेस्ट ट्यूब बेबी बना लें या कुछ और बना ले। उसमें सारी प्रक्रिया गर्भ वाली ही चल रही है। यह बात अलग है वह गर्भ जैसा वातावरण किसी ट्यूब में एकत्रित कर सकते हैं। लेकिन जो भीतरी प्रक्रिया है, गरण अर्थात् मिश्रण की और गर्भ की वह तो प्रक्रिया वही चलती है तभी इस जीव की उत्पत्ति होती है। माता के द्वारा उपभुक्त आहार के गरण होने को गर्भ कहते हैं। इस तरह से देव और नारकियों का जन्म उपपाद–जन्म होता है।

सम्मूर्छन जन्म किसके होता है?आचार्य बताते हैं–

शेषाणां सम्मूर्छनम् ।। 35 ।।

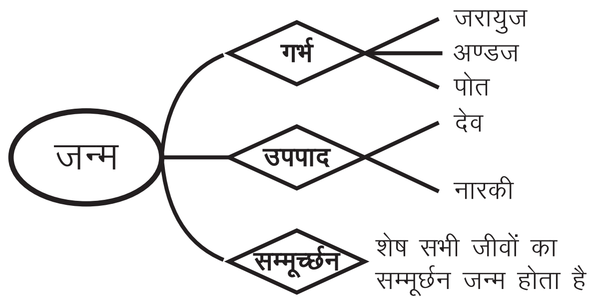

अर्थ– गर्भ और उपपाद जन्म वालों से शेष बचे हुए जीवों का सम्मूर्छन जन्म होता है।

शेष जीवों का जो जन्म होता है उसे सम्मूर्छन जन्म कहते हैं। शेष जीवों से तात्पर्य–जो गर्भज जन्म वाले और उपपाद जन्म वाले जीवों के बाद शेष रह गए जीव हैं उन्हें सम्मूर्छन जन्म वाले जीव कहते हैं। जिन जीवों में गर्भज के लक्षण न दिखें–जरायुज, अण्डज व पोत और उपपाद जन्म वाले भी न हो, शेष बचे हुए जीव सम्मूर्छन जन्म वाले जीव कहलाएंगे। ऐसे जीवों के शरीर बनते रहते हैं। उन जीवों के शरीर की भिन्नता आगे बताई जा रही है।

शंका– विग्रहगति में जब जीव गमन करता है तो मोड़ों की जो संख्या होती है वह किस चीज पर निर्भर करती है?

समाधान– मोड़ों की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि उसको कहाँ तक पहुँचना है और वहाँ तक पहुँचने में श्रेणी के अनुसार कितने मोड़े लग सकते हैं ?

शंका– जब जीव एक गति से दूसरी गति में जाता है तो वह वहाँ परछाई के रूप में जाता है या धुआं हो जाता है अथवा किस रूप में जाता है?

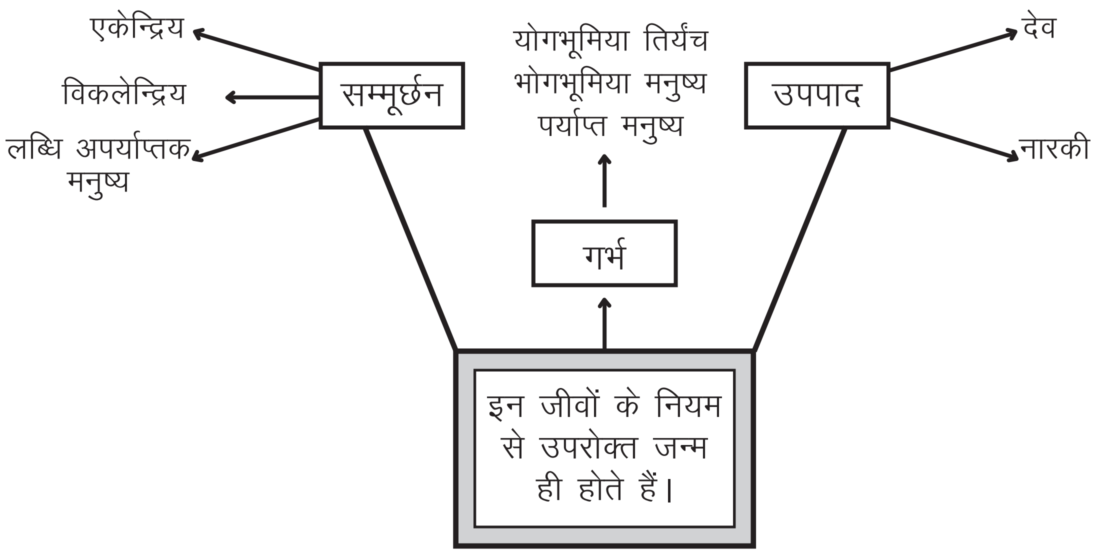

समाधान–दूसरी गति में जाते समय जीव का आकार पूर्व आकार का ही होता है। जैसे आपको देवगति में जाना है तो आपकी आत्मा के प्रदेश उस विग्रहगति में मनुष्य के आकार के ही रहेंगे।

शंका– क्या केवली भगवान इस चीज को देख सकते हैं ?

समाधान–हाँ ! केवली भगवान ने देखा तभी तो बताया है। इसी को आनुपूर्वी नामकर्म कहते हैं। उस आनुपूर्वी नामकर्म के कारण से ही यह आकार बनता है। यह आपको आठवें अध्याय में पढ़ने को मिलेगा।

आगे के सूत्र में आचार्य बताते हैं कि इस जीव के पास कितने शरीर होते हैं?प्रत्येक प्राणी यह जानता है इस जीव का मनुष्य गति में जन्म हुआ तो मनुष्य का शरीर मिल गया, तिर्यंच गति में जन्म हुआ तो तिर्यंच का शरीर मिल गया। चारों गतियों के जीव अपने–अपने कर्म के अनुसार अलग–अलग शरीर को धारण करते हैं। हमारे शरीर में भी आत्मा से जुड़े हुए और शरीर होते हैं उनके बारे में जो आपको जानकारी मिलेगी वह केवल जैन दर्शन से और इस तत्त्वार्थसूत्र के द्वितीय अध्याय से मिलेगी।

आचार्य शरीर के नाम व भेद बताते हैं–

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि।।36।।

अर्थ–औदारिक (मनुष्य, तिर्यंच का स्थूल शरीर) वैक्रियिक (नाना प्रकार के शरीर बनाने में समर्थ) आहारक (छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से एक हाथ का पुतला संशय निवारणार्थ निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं) तैजस (तेज युक्त शरीर) कार्मण (आठ कर्मों का समूह) ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं।

आचार्य कहते हैं–पाँच प्रकार के शरीर होते हैं, जो आत्मा धारण करता है। पहला औदारिक शरीर, दूसरा वैक्रियिक शरीर, तीसरा आहारक शरीर, चौथा तैजस शरीर और पाँचवां कार्मण शरीर होता है। ये पाँच प्रकार के शरीर होते है। इन पाँचों प्रकार के शरीरों का जो क्रम दिया है वह सूक्ष्मता की अपेक्षा से दिया है।

सबसे स्थूल **औदारिक शरीर** होता है जो हमें देखने में आता है। इस औदारिक शरीर को मनुष्य और तिर्यंच धारण करते हैं। इस औदारिक का नाम भी इसीलिए पड़ा क्योंकि उदार का मतलब होता है थूल (स्थूल) और उदार शब्द से ही औदारिक बना है। औदारिक का अर्थ होता है जो स्थूल युक्त हो या फैला हुआ हो जो लोगों के देखने में जा जाए, सभी के ग्रहण करने में आ जाए ऐसे शरीर का नाम औदारिक शरीर होता है। "आचार्य श्री वीरसेन महाराज जी" ने इसका एक और अर्थ बहुत अच्छा बताया है जिसका वर्णन उन्होंने "धवला ग्रन्थ" में किया है। वे कहते हैं कि उदार प्रयोजन जिससे सिद्ध होता है उसका नाम औदारिक होता है। उदार का अर्थ है बहुत बड़ा अर्थात्

महान् प्रयोजन जिससे सिद्ध हो जाए। वह महान् प्रयोजन क्या है? आचार्य बताते हैं–मोक्ष को प्राप्त करने का महान् प्रयोजन, केवलज्ञान को प्राप्त करने का महान् प्रयोजन जिससे सिद्ध होगा वह शरीर औदारिक शरीर कहलाएगा। ऐसे इस औदारिक शरीर के बहुत लाभ भी हैं और इस औदारिक शरीर की स्थूलता अधिक होने के कारण इसको क्रम में सर्वप्रथम रखा गया है।

दूसरे शरीर का नाम **वैक्रियिक शरीर** है। जो शरीर विक्रिया के माध्यम से बनते हैं उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। वैक्रियिक शरीर का अभिप्राय है कि ऐसे शरीर की प्राप्ति हो जाना जिसके माध्यम से हम उस शरीर के और भी कई शरीर बना सकें। हम इससे छोटे–बड़े, लम्बे–चौड़े, पृथक्–अपृथक् सभी तरह के शरीर बना सकते हैं। वैक्रियिक शरीर का अर्थ है विक्रिया करने की क्षमता आ जाना। यह विक्रिया करने की क्षमता देव और नारकियों में स्वभाव से ही मिलती है। देवगति और नरकगति में जो जीव जाएगा उसका शरीर वैक्रियिक शरीर ही होगा। चाहे कोई भी देव या नारकी कितना भी बड़ा या छोटा हो, सभी का शरीर वैक्रियिक शरीर ही होगा। उनका शरीर कभी औदारिक नहीं होगा और अपना (मनुष्य) शरीर कभी वैक्रियिक नहीं होगा। मनुष्यों और देवों, नारकियों के शरीर में गुणों की अपेक्षा बहुत अंतर होता है। वैक्रियिक शरीर के बहुत गुण होते हैं। वैक्रियिक शरीर में कभी पसीना नहीं आता, सप्त धातुओं से रहित होता है, हाड़–माँस–मज्जा उसमें नहीं होती। इस शरीर में थकान उत्पन्न नहीं होती, उनके नख–केश नहीं बढ़ते हैं। ये सभी वैक्रियिक शरीर के विशेष गुण हैं। यह वैक्रियिक शरीर देवों को प्राप्त होता है। चाहे वह भवनवासी हो, व्यंतर हो, ज्योतिषी हो या वैमानिक, कोई भी देव हो उसका शरीर वैक्रियिक शरीर ही होगा। इस तरह से देवों और नारकियों का शरीर वैक्रियिक हुआ और मनुष्य, तिर्यंच, विकलेन्द्रिय जीवों का शरीर औदारिक शरीर होगा।

तीसरा **आहारक शरीर** होता है। यह एक विशेष शरीर होता है जो विशेष प्रकार के तप और ऋद्धि से मुनि महाराज को प्राप्त होता है। यह ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को प्राप्त होता है। इस शरीर के माध्यम से वह अपने अंदर उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं का समाधान कर लेते हैं। वह शरीर इसी औदारिक शरीर से बाहर निकलता है, पुनः वापिस आकर इसी शरीर में समा जाता है। इसकी शुभता आदि के बारे में स्वयं आचार्य आगे के सूत्र में बताएंगे।

चौथे शरीर का नाम **तैजस शरीर** है। यह तैजस शरीर बहुत काम का शरीर है। इसके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। यह तैजस शरीर सभी संसारी आत्माओं के साथ जुड़ा रहता है। इसको आप एक Luminous body समझ सकते हो। जो अपने शरीर में कान्ति प्रदान करता है। प्रत्येक प्राणी के शरीर में एक लाइट है, एक एनर्जी है। जो कुछ भी हमें एनर्जी मिलती है वह इसी तैजस शरीर से मिलती है। यह एक तरह से हमारे भीतर का एक Electric System है। इस शरीर का हमारी आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। औदारिक शरीर का हमारी आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह स्थूल–थूल है। लेकिन इस तैजस शरीर के प्रदेश एवं आत्मा के प्रदेश दोनों एक दूसरे से बंधे हुए हैं। जैसे–कार्मण शरीर के परमाणु हमारी आत्मा से बंधे हुए रहते हैं वैसे

ही इस तैजस शरीर के भी बंधे रहते हैं। यह तैजस शरीर हमारे अंदर ऊर्जा प्रदान करता है। इस तैजस शरीर से ही हमारे अंदर गर्मी पैदा होती है। अगर हमारे शरीर के अंदर गर्मी न रहे तो आप ठंडे पड़े और मरे। जब कोई आदमी मर जाता है तो दूसरे व्यक्ति अपने हाथों से उसे छूकर यही देखते हैं कि उसका शरीर ठंडा पड़ गया है या अभी भी गरम है। यदि आदमी मर गया है तो उसका शरीर ठंडा पड़ जाता है। क्योंकि आत्मा निकल गई और उस आत्मा के साथ ही वह तैजस शरीर भी निकल गया। जैसे ही यह तैजस शरीर निकल जाएगा उसके शरीर की कान्ति निकल जाएगी। आपके शरीर का जो Temprature 98.4F या 37^0C जो बना हुआ है वह इसी के कारण बना हुआ है। अगर आपके शरीर का Temprature बढ़ रहा है तो समझना इस तैजस शरीर के अंदर का Function गड़बड़ा रहा हैं। इस तैजस शरीर को अगर आप सही बनाकर रखेंगे तो आपके शरीर में जितनी भी गर्मियाँ हैं वह सही रहेगी। क्योंकि शरीर में आग है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। जठर का अर्थ है–पेट। पेट की अग्नि को जठराग्नि कहते हैं, उस अग्नि से ही आपका शरीर चल रहा है। यदि वह अग्नि समाप्त हो जाए तो आपका जीवन भी समाप्त हो जाएगा। आप कहते हो–भूख लग रही है या पेट में चूहे कूद रहे हैं। इसका मतलब यह हुआ कि पेट के अंदर की अग्नि भड़क रही है। इस शरीर के अंदर की जो आग है, उस आग को बनाये रखने का काम भी इस तैजस शरीर का ही है। शरीर में ताप बनाए रखना, जठराग्नि को बनाए रखना और फिर शरीर में जहाँ–जहाँ भी Process चलते हैं जिनके लिए energy की जरूरत पड़ती है जो हमें शरीर के भिन्न–भिन्न भागों में काम में आती हैं। जिनके माध्यम से शरीर के अंदर स्वतः ही रक्त, मज्जा, माँस आदि बनते चले जाते हैं। इन सारी चीजों का Formation इसी तैजस शरीर की बहुत बड़ी ऊर्जा के माध्यम से चलता रहता है। इस तैजस शरीर को आप Manage भी कर सकते हैं, इसको Recharge भी कर सकते हैं। इस तैजस शरीर को आप रिचार्ज करके कर्मों के पास भी उस अग्नि को पहुँचा सकते हैं और अपने कर्मों को भी जला सकते हैं। क्योंकि तैजस और कार्मण शरीर बहुत पास–पास रहते हैं। जब आप ध्यान करेंगे तो आपमें जो सबसे ज्यादा ऊर्जा आती है वह आपके अंदर से ही आती है। वह ऊर्जा इस तैजस शरीर के चार्ज होने से आती है। आपका तैजस शरीर जितना ज्यादा चार्ज होगा उतनी ही ज्यादा आप ऊर्जा महसूस करेंगे। जब भी हम अपने आपको सुस्त महसूस करेंगे तब हम ध्यान और प्राणायाम के माध्यम से अपने अंदर की ऊर्जा को पुनः पैदा–कर सकते हैं। उसके लिए यह तैजस शरीर ही सबसे ज्यादा सहायक होता है। इस तैजस शरीर पर प्रभाव पड़ा और इसने आपको ऊर्जा प्रदान की, आपको कान्ति भी प्रदान की। इसी कारण आपका शरीर चलता रहता है। इसलिए ध्यान में इसी को रिचार्ज किया जाता है। ध्यान करते समय हम इस शरीर के पास पहुँचे तो हमारे अंदर बहुत अधिक energy आ जाएगी। कोई भी डॉ. उपकरण के माध्यम से बाहर से तभी तक सहायता कर पाता है जब तक उस शरीर में ऊर्जा इस तैजस शरीर के माध्यम से पहुँच रही हो।

शरीर से खून बह रहा है, ब्लड की गति शरीर के अंदर बहुत ज्यादा है, अपने फेफड़े बहुत तीव्र गति से काम करते हैं। प्रत्येक समय शरीर के अंदर इतनी पम्पिंग होती रहती है जितनी पम्पिंग आप अपने मुँह से नहीं कर पाओगे, इन सबके लिए जो एनर्जी मिलती है वह सब इस तेजस शरीर से ही

मिलती है। यदि आपके फेंफड़ों की पम्पिंग कम हो जाए, तैजस शरीर बिल्कुल Discharge हो जाए तो डॉ. भी किसी भी प्रकार के तरीकों से उसको चार्ज नहीं कर पाएगा। वह डॉ. उतना ही कर पाएगा जितना आपके अंदर खींचने की क्षमता है। इसलिए जब सर्जिकल डॉ. फेल हो जाते हैं तब ये healing system काम आते हैं। जिसे कहते हैं अपने शरीर को heal करना। अपने शरीर के अंदर स्वयं अपनी ऊर्जा उत्पन्न करना। उस एनर्जी से आप अपने अंदर के रोगों को दूर करेंगे तो वह सबसे अधिक जड़ मूल से रोग दूर होंगे। बाकी के दो बाहरी उपचार हैं जो केवल ऊपर तक ही सहायक होते हैं। हमारे अंदर ऐसे कई रोग है जिन्हें आप अपने माध्यम से ठीक कर सकते हैं। कैंसर जैसे रोग की healing भी इस तैजस शरीर के charging के साथ हो सकती है। आप थाइराइड जैसी बीमारी भी ध्यान के माध्यम से ठीक कर सकते हो जब आप ध्यान लगाओगे तो यह बीमारी जड़मूल से समाप्त हो जाएंगी। आपकी आँख की बीमारियाँ, कान की बीमारियाँ, दिमाग की बीमारियाँ,आदि सभी बीमारियाँ,आप अपने अंदर healing करके ध्यान के माध्यम से इस तैजस शरीर को recharge करके करोगे तो आप भीतर से सही होते चले जाओगे। आपके अंदर विश्वास नहीं है और आपके अंदर स्वतः ठीक होने की भावना नहीं रहती है। आप यही चाहते हैं कि आपको दूसरा ठीक कर दे। आप डॉक्टरों पर निर्भर हो जाते हैं, दवाइयों के आदी हो जाते हैं जिसके कारण से हमारा स्वास्थ्य बिगड़ता चला जाता है। प्रत्येक बीमारी का इलाज ध्यान के माध्यम से हो सकता है। ये सभी ध्यान मुनिश्री द्वारा रचित पुस्तक 'अर्हम् योग ध्यान' में है; इन सभी ध्यानों का विस्तृत विवेचन इस पुस्तक में किया गया है।

इन ध्यानों को करने के माध्यम से आप लम्बे समय तक स्वस्थ रह सकेंगे और डॉक्टरों की दवाइयों से भी आप स्वयं को बचा सकोगे। आज प्रत्येक व्यक्ति के दिमाग में यह सोच बनी रहती है–'क्या करना है बीमार पड़ेंगे तो दवाई खा लेंगे।' इसी कारण से बीमारियां जड़मूल से सही नहीं होती है। कहने का तात्पर्य है यह तैजस शरीर हमारे लिए बहुत सहायक है। यह हमारे लिए बहुत अच्छा काम करने वाला है। इस शरीर को आप ध्यान के माध्यम से चार्ज कर सकते हैं।

तैजस शरीर के साथ ही यह **कार्मण शरीर** जुड़ा रहता है। यह कार्मण शरीर हमारे अंदर कर्म परमाणुओं को इकट्ठा करता रहता है। हम जैसे–जैसे भाव करते हैं उन भावों के माध्यम से भी ये कर्म परमाणु बंधते चले जाते हैं। यदि आप जाग्रत होंगे तो कर्म कम बंधेंगे और आप बेहोशी में है तो आपके कर्म ज्यादा बंधेगे। बेहोशी से तात्पर्य शयन करना नहीं है इसका तात्पर्य है कि आपको अपनी आत्मा का विचार नहीं, आपको अपने मन का विचार नहीं और आपको अपने भावात्मक परिणतियों का विचार नहीं है। इस बेहोशी में आप जब तक रहोगे तब तक आपके कर्मों का बंध बहुत अधिक होगा। ध्यान के माध्यम से जब यह जाग्रति आती है तो कर्म बंध पर भी प्रभाव पड़ता है और अच्छे पुण्य कर्मों का बंध होने लगता है। पुण्य–फलों का मतलब है कि अपने अंदर ऐसे सकारात्मक कर्मों का बंध करना जिसके उदय में आने पर, जिसके पुनः फल देने पर अपने आप सकारात्मक वातावरण बनेगा और बाहर भी अपने आस–पास एक सकारात्मक वातावरण बनने लग जाएगा। ये

सभी चीजें अपने अंदर की Inner feeling हैं। इन्हीं feelings के माध्यम से होने वाली healing system है। इस पर आज विदेशों में बड़े–बड़े डॉ. बने हुए हैं। इसी healing system के माध्यम से चीन, जापान में बड़ी–बड़ी थैरोपी निकली हुई हैं। ये सभी system इसी के माध्यम से चलते हैं। तैजस और कार्मण शरीर ये हमारी आत्मा से जुड़े हुए होते हैं। लोग इन तक पहुँच जाते हैं और अपने शरीर की healing भी कर लेते हैं। लेकिन आत्मा तक तो पहुँचने के लिए आपको इससे और भीतर जाना पड़ेगा। क्योंकि आत्मा इन शरीरों की गिरफ्त में है और मुख्य रूप से तैजस और कार्मण शरीर आत्मा से बंधे हुए हैं। इस प्रकार आपके अंदर तीन प्रकार के शरीर आपकी आत्मा से बंधे हुए हैं। दो शरीर आपको दिखाई नहीं देते क्योंकि वे तो आपकी आत्मा से बंधे हुए रहते हैं। तीसरा जो ऊपर–ऊपर है जो आपको दिखाई देता है। ये तीन प्रकार के शरीर प्रत्येक संसारी प्राणी के पास है। कोई भी संसारी प्राणी इन तीन शरीर से रहित नहीं होता है। अगर होगा तो केवल विग्रहगति में होगा और वह भी केवल एक समय, दो समय या तीन समय के लिए ही होगा। वह उस समय तैजस और कार्मण शरीर वाला होगा, तीसरा शरीर उसका उस समय छूट जाएगा।

आगे के सूत्र में आचार्य शरीरों की सूक्ष्मता का वर्णन कर रहे हैं–

परं परं सूक्ष्मम् ।। 37 ।।

अर्थ–पाँचों शरीरों में पूर्व की अपेक्षा आगे आगे के शरीर सूक्ष्म हैं।

ये सभी शरीर परं–परं अर्थात् आगे–आगे के शरीर सूक्ष्म हैं। औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म होता है, वैक्रियिक शरीर से आहारक शरीर सूक्ष्म होता है। आहारक शरीर से तैजस शरीर और सूक्ष्म होता है और तैजस शरीर से कार्मण शरीर अधिक सूक्ष्म होता है।

आगे के सूत्र में शरीरों के प्रदेश के बारे में आचार्य कहते हैं–

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।38 ।।

अर्थ–प्रदेशों की अपेक्षा तैजस शरीर से पहले के तीन शरीर औदारिक, वैक्रियिक और आहारक में पहले की अपेक्षा अगले में असंख्यात गुणे प्रदेश हैं।

आचार्य कहते हैं कि इन औदारिक आदि तीन शरीरों के जो प्रदेश हैं, प्रदेश अर्थात् इनके जो परमाणु हैं जिनसे यह शरीर बनता है वे तो असंख्यात गुणे–असंख्यात गुणे होते चले जाते हैं। अर्थात् औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर में परमाणुओं की संख्या अधिक है। जिन परमाणुओं से वैक्रियिक शरीर बना है उन परमाणुओं की संख्या वैक्रियिक शरीर में Quantity की अपेक्षा से अधिक है। लेकिन वह शरीर सूक्ष्म है। परमाणु अधिक होने पर भी उसमें सूक्ष्मता से परिणमन हो रहा है। ये उन शरीरों के परमाणुओं की विशेषताएं हैं। यह जरूरी नहीं है। अगर किसी चीज में परमाणु अधिक हो, द्रव्य अधिक हो तो वह चीज हमें स्थूल रूप में दिखाई दे। कभी–कभी ऐसा होता है आपको कोई चीज बड़ी दिखाई देगी लेकिन उसमें परमाणुओं की संख्या अधिक होने पर भी वह चीज हल्की

होगी। सूक्ष्म होने से तात्पर्य हल्का हो जाना। इस तरह से भी शरीर बनते हैं जिसके माध्यम से यह शरीर हमें दिखाई नहीं देते लेकिन उनमें परमाणु और अधिक होते चले जाते हैं। परमाणुओं की संख्या अधिक होगी लेकिन उनका आकार इत्यादि सूक्ष्म हो जाएगा। औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म हो गया लेकिन परमाणुओं की संख्या असंख्यात गुणा अधिक हो गई। वैक्रियिक शरीर से आहारक शरीर और अधिक सूक्ष्म हो गया लेकिन उसमें परमाणुओं की संख्या और असंख्यात गुणा अधिक हो गई।

एक लड्डू होता है जिसे राजगिर का लड्डू कहते हैं। वह लड्डू बहुत मोटा और बड़ा होता है। दिखने में तो वह बहुत बड़ा होता है लेकिन उसमें बिल्कुल भी भारीपन नहीं होता है। वह बहुत हल्का होता है। देखने में तो इतना बड़ा लगता है और जब उसे खाओगे तो पता भी नहीं लगेगा कब खतम हो गया। दूसरा मोतीचूर का लड्डू होता हैं जो विशेष घी बेसन इत्यादि से बनता हैं। देखने में तो छोटा लगता है लेकिन अगर इस लड्डू को उस राजगिरि के लड्डू के आधे बराबर भी खालोगे तो आपका पेट भर जाएगा। उसमें परमाणु उससे ज्यादा है लेकिन देखने में छोटा लग रहा है। एक लड्डू खोए का होता है वह उससे भी छोटा होता है लेकिन उसके अंदर की जो Intensity होती है वह उससे ज्यादा होगी। आप उस छोटे आकार के लड्डू को खा लोगे तो भी आपका पेट भर जाएगा।

परमाणुओं की संख्या बढ़ती जा रही है, घनत्व उनका बढ़ता जा रहा है लेकिन वे आकार में छोटे हैं। इसी तरह से आहारक, वैक्रियिक और औदारिक शरीर के विषय में समझना। लेकिन इनमें जो असंख्यात गुणे बढ़ने का जो क्रम हैं–'प्राक्तैजसात्' अर्थात् तैजस शरीर से पहले–पहले तक। 'प्राक्' शब्द अगर आ जाए तो वह उसकी boundary बन जाती है उसे छूना नहीं उससे पहले–पहले ही लेना। आहारक शरीर से तैजस शरीर में आप असंख्यात गुणे नहीं करना। तैजस शरीर से पहले–पहले के ही शरीर में असंख्यात गुणे का यह क्रम बनाना।

आगे के शरीर में क्या करना है तो आचार्य तैजस, कार्मण शरीर के प्रदेश के विषय में कहते हैं–

अनन्तगुणे परे।।39।।

अर्थ–शेष दो शरीर अनन्तगुणे प्रदेश वाले हैं अर्थात् आहारक शरीर से अनन्त गुणे प्रदेश तैजस शरीर में और तैजस शरीर से अनन्त गुणे प्रदेश कार्मण शरीर में है।

'परे' का अर्थ है बाद के। जो बाद के दो शरीर हैं तैजस शरीर और कार्मण शरीर, इन दोनों ही शरीरों में अनन्त गुणा परमाणुओं का प्रदेश बढ़ जाता है। अर्थात् आहारक शरीर से तैजस शरीर के परमाणु अनन्त गुणे होंगे और तैजस शरीर से भी कार्मण शरीर के अन्दर रहने वाले परमाणु अनन्त गुणे होते हैं। अर्थात् कार्मण शरीर में सबसे ज्यादा प्रबलता होती है। बहुत ज्यादा घनत्व होता है। जो अपनी आत्मा को जकड़े हुए हैं।

हमें समझ लेना चाहिए कि हमारी आत्मा ऐसे अनन्त–अनन्त परमाणुओं वाले दो घनीभूत शरीरों से बंधी हुई है। इसी के कारण आत्मा के जो गुण हैं वह प्रकट नहीं हो पाते हैं। इन कार्मण शरीरों के माध्यम से ही अनेक प्रकार के कर्मों का जो बंध हैं वे सभी इन अनन्त–अनन्त परमाणुओं के साथ आत्मा के प्रत्येक, एक–एक पाइन्ट से बंधे हुए हैं। वह कार्मण शरीर का बन्ध और तैजस शरीर का बन्ध इस तरह से आत्मा में निरन्तर चलता रहता है। यह कहलाएगा–'अनन्त गुणे परे' अर्थात् तैजस से भी कार्मण परमाणुओं में और अनन्त गुणी संख्या हो गई। अनन्त का क्रम तो आत्मा से बंधा है। यह तो असंख्यात–असंख्यात संख्या वाले हैं जो हमारे शरीर में है और यह सब छूट जाता है परन्तु अनन्त वाला नहीं छूटता है। उसकी संख्या बराबर बनी रहती है। उसके घनत्व से अपनी आत्मा को मुक्त कराना यह सबसे बड़ा कठिन कार्य है।

आगे आचार्य तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता कहते हैं–

अप्रतिघाते।।40।।

अर्थ–तेजस और कार्मण शरीर अप्रतिघात–बाधा रहित है अर्थात् किसी भी मूर्तिक पदार्थ से न रूकते हैं और न किसी को रोकते हैं।

यहाँ अन्त के दो शरीर इसी सूत्र के साथ सम्बन्ध रखेंगे। 'अप्रतिघाते' का अर्थ है–इनका कहीं पर भी प्रतिघात नहीं होता है। इनके गमन करने में कोई भी कठिनाई या विरोध कहीं पर भी नहीं आएगा। इन दोनों शरीर के साथ आत्मा जाएगा तो किसी भी जगह से निकल जाएगा। पर्वतों के अंदर भी घुस जाएगा, पर्वतों के पार भी चला जाएगा, समुद्र की तह तक चला जाएगा, लोक के अन्त तक भी चला जाएगा। कहीं पर भी ये कार्मण और तैजस शरीर प्रतिघात को प्राप्त नहीं होते। इन्हें कहीं पर भी रूकावट नहीं आती। इसलिए आत्मा कहीं पर भी जाकर जन्म ले सकता है। इस औदारिक शरीर के साथ आप किसी भी दीवार को पार नही ंकर सकते लेकिन इस कार्मण और तैजस शरीर के साथ आत्मा मोटी–मोटी दीवारों को भी पार कर सकता है। इसलिए आचार्य कहते हैं 'अप्रतिघाते' अर्थात् ये किसी भी मूर्तिक पदार्थ से न रूकते हैं और न किसी को रोकते हैं। इस कार्मण और तैजस शरीर के साथ आत्मा पाताल लोक में छः राजू नीचे सातवीं पृथ्वी तक भी जाकर जन्म ले सकती है। एक समय, दो समय में आत्मा कहाँ से कहाँ तक पहुँच जाता है ?उस शरीर को जो यहाँ छूट गया है उसको गाढ़ने के लिए कुदाली चाहिए, फावड़ा चाहिए तब उसका शरीर नीचे जाता है। इन दोनों शरीरों के साथ आत्मा कहीं का कहीं पहुँच जाता है। इसके लिए कहीं भी कोई व्यवधान नहीं है।

आप विचार करें–यदि पूरे कमरे को बंद कर दें, कहीं भी कोई भी छेद बाकी न रह जाए, उसे काँच से पैक कर लो चाहे P.O.P लगाकर पैक कर लो फिर भी आप उस आत्मा को वहाँ रोक नहीं पाओगे। विज्ञान सभी प्रयास कर रहा है और आत्मा को पकड़ना चाहता है क्योंकि वास्तव में वह इस

सूत्र को नहीं जानता। इस सूत्र पर उसको विश्वास हो जाए तो फिर किसी प्रैक्टिकल को करने की जरूरत ही नहीं है।

एक बार किसी वैज्ञानिक ने एक ऐसा ही प्रैक्टिकल किया था। आत्मा जाती कहाँ है?उसका वजन कितना होता है?उसने जिस व्यक्ति की मृत्यु होने वाली थी उसका Weight कर लिया और जब उसकी मृत्यु हो गई तब उसका Weight कर लिया। फिर जो Weight loss हुआ उसके लिए उन्होंने कह दिया That is the weight of soul. और उसका वजन 20 ग्राम बताया। लोग ऐसी–ऐसी बेवकूफियां करते रहते हैं। जब तक हम आत्मा के इन शरीरों के विज्ञान को नहीं समझेंगे तब तक हम ऐसे ही कार्य करते रहेंगे। जिन्हें इन सूत्रों पर विश्वास हो गया उन्हें इस प्रकार के प्रैक्टीकल की कोई आवश्यकता नहीं है।

तैजस और कार्मण शरीर के विषय में आचार्य कहते हैं–

अनादि–सम्बन्धे च ।।41।।

अर्थ–तैजस और कार्मण शरीर आत्मा के साथ अनादि से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

आचार्य कहते हैं इन दोनों ही शरीरों का आत्मा से अनादि से सम्बन्ध है। जब से यह आत्मा है तभी से यह कार्मण और तैजस शरीर है। इनका आत्मा के साथ कोई प्रारम्भिक बिन्दु नहीं है। अनादि का अर्थ है–Begning less time अनादि काल से आत्मा के साथ ये दोनों शरीर जुड़े हुए हैं। यहाँ पर, 'च' से तात्पर्य अनादि भी है और सादी भी है। क्योंकि अनादि तो यह कर्म परम्परा की अपेक्षा से चल रहा है और सादी से तात्पर्य है जो नए–नए कर्म हम अपनी आत्मा से जोड़ते रहते हैं उसकी अपेक्षा से इसे सादी भी समझना। पुराना भी चल रहा है और नया–नया भी उसमें जुड़ता चला जा रहा है। इसी को कहते हैं कि सादी सम्बन्ध भी है और कथंचित् अनादि सम्बन्ध भी है।

आगे सूत्र में आचार्य बताते हैं–

सर्वस्य ।।42।।

अर्थ–ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवों के होते हैं।

आचार्य कहते हैं–ये दोनों शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं।

एक साथ एक जीव के कितने शरीर–

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।43।।

अर्थ–तैजस, कार्मण शरीर को आदि लेकर एक साथ एक जीव के चार शरीर तक विभक्त कर लेना

एक साथ एक जीव के कितने शरीर

	2	3	3	4	4
कौन से–	तेजस, कार्मण	तेजस, कार्मण, औदारिक	तेजस, कार्मण, वैक्रियिक	तेजस, कार्मण, औदारिक, आहारक	तेजस, कार्मण, औदारिक, वैक्रियिक
स्वामी	मोड़े वाली विग्रह गति में स्थित जीव	मनुष्य, तिर्यंच	देव, नारकी	छठे गुण–स्थानवर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनिराज	विक्रिया ऋद्धिधारी मुनिराज

चाहिए। विग्रहगति में मात्र तैजस, कार्मण शरीर होते हैं। यदि तीन होंगे तो तैजस, कार्मण औदारिक अथवा तैजस, कार्मण, वैक्रियिक। चार होंगे तो तैजस, कार्मण औदारिक, आहारक। परन्तु एक साथ पाँच शरीर नहीं होते हैं।

जैसा कि पहले सूत्र में बताया गया था एक आत्मा में एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं इसी तरह इस सूत्र में भी यह बताया गया है कि एक जीव एक साथ कितने शरीर को धारण कर सकता है। एक जीव आत्मा में कम से कम दो शरीर को धारण कर सकता है। जब विग्रहगति में होगा तो तैजस, कार्मण–दो शरीर रहेंगे और उसे तीसरा शरीर मिलेगा तो वह औदारिक मिलेगा। जो वैक्रियिक शरीर वाले होंगे उनके लिए वैक्रियिक शरीर हो गया। कभी–कभी ऋद्धि से भी वैक्रियिक की प्राप्ति हो जाती है। ऋद्धि से ही आहारक शरीर की प्राप्ति हो जाती है। इस तरह से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक में से औदारिक व आहारक शरीर एक साथ हो सकते है। इस सिद्धान्त में एक और बात भी आती है–वैक्रियिक और आहारक दोनों एक साथ नहीं होते हैं। वैक्रियिक शरीर होगा तो आहारक शरीर नहीं होगा और आहारक शरीर होगा तो वैक्रियिक शरीर नहीं होगा। अर्थात् एक साथ अधिक से अधिक चार शरीर आत्मा के पास हो सकते हैं।

कार्मण शरीर की विशेषताओं के बारे में बताते हुए आचार्य कहते हैं–

निरुपभोगमन्त्यम्।।44।।

अर्थ–अन्त का कार्मण शरीर उपभोग रहित है।

अन्त्यम् अर्थात् अन्त का कार्मण शरीर उपभोग से रहित है। उपभोग का अर्थ है कि हम उसे अपनी इन्द्रिय का विषय नहीं बना सकते हैं। अर्थात् कार्मण शरीर कभी भी इन्द्रियों के द्वारा देखा नहीं जा सकता है। जब कर्म को ही नहीं देख सकते तो उसमें बैठी हुई आत्मा को कैसे देख सकते हैं?विग्रहगति में भी भावेन्द्रिय होती है द्रव्येन्द्रिय नहीं, इससे उपभोग नहीं होता।

किस जन्म से कौन शरीर होता हैं?आचार्य कहते हैं–

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ।।45।।

अर्थ–गर्भ और सम्मूर्छन से उत्पन्न हुआ शरीर आद्य=प्रथम = औदारिक शरीर कहलाता है।

औदारिक शरीर किसको प्राप्त होता है?उसके लिए इस सूत्र में बताया जा रहा है। जो गर्भज जन्म वाले हैं और सम्मूर्छन जन्म वाले हैं वे सभी जीव औदारिक शरीर वाले होते हैं।

औपपादिकं वैक्रियिकम् ।।46।।

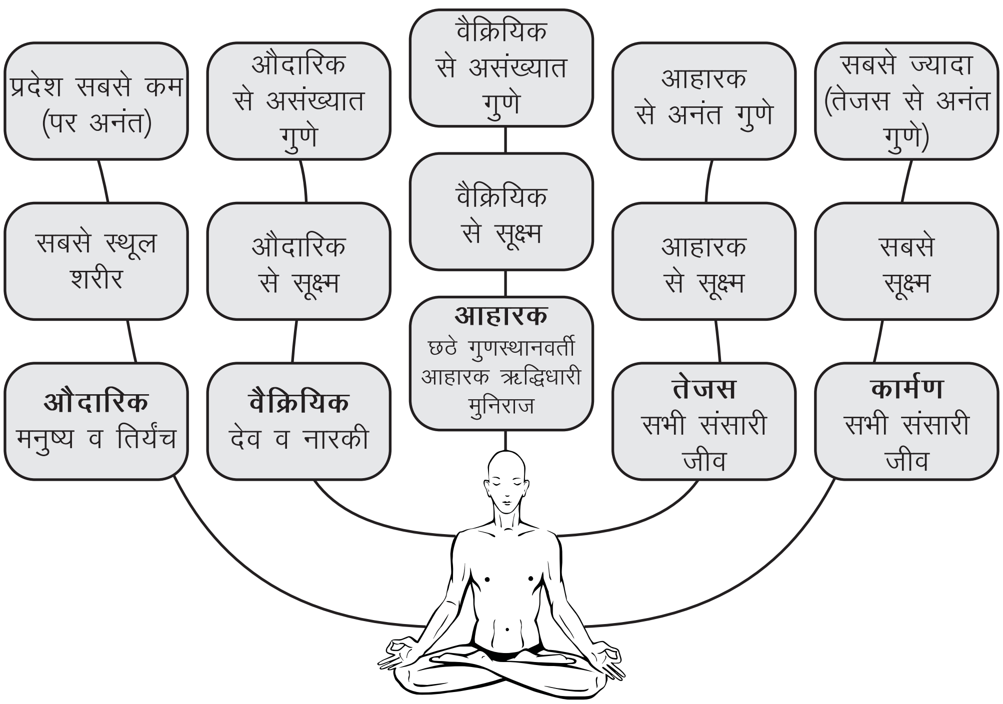

अर्थ–उपपाद जन्म से होने वाला देव–नारकियों का शरीर–वैक्रियिक कहलाता है।

वैक्रियिक शरीर किसका होता है?आचार्य कहते हैं उपपाद जन्म वालों का वैक्रियिक शरीर होता है। उपपाद जन्म वाले कौन होते हैं?तो पिछले सूत्र में बताया गया था– 'देवनारकाणामुपपादः' अर्थात् देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है। इसलिए उनका शरीर वैक्रियिक शरीर होगा।

लब्धिप्रत्ययं च।। 47।।

अर्थ–वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तिक भी होता है। तप विशेष से प्राप्त हुई ऋद्धि–विशेष को लब्धि कहते हैं।

आचार्य कहते हैं यह जो वैक्रियिक शरीर है वह लब्धि–प्रत्यय भी होता है। लब्धि का अर्थ है कि तप विशेष के द्वारा ऋद्धि से भी इस वैक्रियिक शरीर को प्राप्त कर लिया जाता है। वैक्रियिक शरीर का अर्थ है–अनेक प्रकार की विक्रियाएँ बना लेना। अगर विक्रिया शक्ति प्राप्त हो जाती है तो आदमी अपना मनचाहा रूप बना सकता है। जैसे–सिंह का, हिरण का, मोर का या किसी और रूप को बना सकता है।

आचार्य कहते हैं–

तैजसमपि।।48।।

निःसरण तैजस शरीर

शुभ	अशुभ
❖ करुणा के कारण निकलता है। ❖ दाहिने कंधे से निकलता है। ❖ श्वेत वर्ण व शुभ आकृति का होता है। ❖ रोग, मारी आदि को दूर करता है।	❖ क्रोध के कारण निकलता है। ❖ बायें कंधे से निकलता है। ❖ सिन्दूरी वर्ण व बिलाव के आकार का होता है। ❖ मन में रही विरुद्ध वस्तु एवं स्वयं को भस्मीभूत करता है।

अर्थ–तैजस शरीर भी लब्धिनिमित्तक होता हैं।

आचार्य कहते हैं–तैजस शरीर भी तप से प्राप्त होता है। इस शरीर को भी वैक्रियिक शरीर की तरह तप से प्राप्त किया जा सकता है।

आहारक शरीर के स्वामी व उसके लक्षण बताते हुए आचार्य कहते हैं–

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव।। 49।।

अर्थ–आहारक शरीर शुभ हैं, विशुद्ध हैं, व्याघातरहित हैं तथा प्रमत्तसंयत नाम के छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है।

इस सूत्र में आहारक शरीर के विषय में बताया जा रहा है। यह आहारक शरीर किसको प्राप्त होता हैं? 'प्रमत्तसंयतस्यैव'–प्रमत्तसंयत छठवें गुणस्थान वाले मुनि महाराज को कहते हैं। उनके ही यह आहारक शरीर होता है। यह कब होता है?यह भी एक ऋद्धि होती है इसमें उनके मस्तिष्क में से

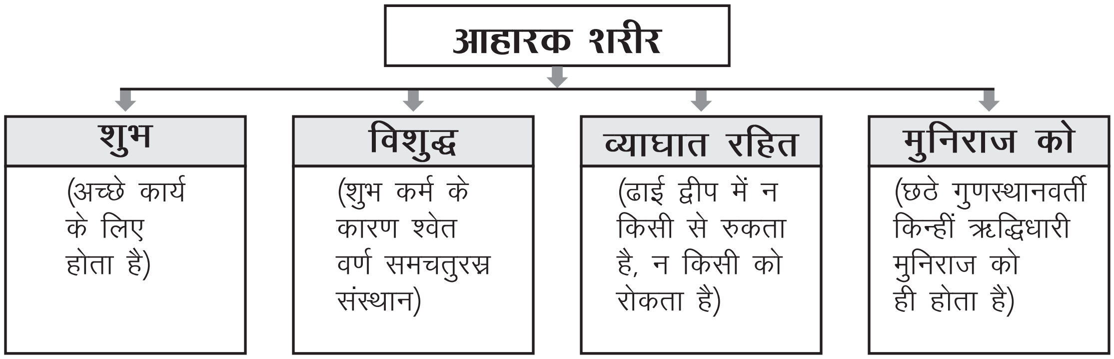

एक हाथ का, शुक्ल वर्ण का सुंदर पुतला निकलता है। यह क्यों निकलता है?जब उनके अंदर कोई तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो जाए जिसका समाधान यहाँ पर कोई न कर सके। जिसका समाधान कोई भी विद्वान् कोई भी मनीषी न कर सके और केवल केवली भगवान या श्रुतकेवली के द्वारा ही किया जा सके। उस जिज्ञासा के कारण से उनके मस्तिष्क से एक हाथ का पुतला निकलता हैं। वह केवली भगवान के पास जाएगा और अपनी जिज्ञासा का समाधान करके पुनः उन महाराज के अंदर समा जाएगा। उससे मुनि महाराज को किसी भी प्रकार की हानि नहीं होगी। उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाएगी। यह आहारक शरीर का कार्य होता है। यह शुभ होता है, विशुद्ध होता है, अव्याघाती अर्थात् बाधा रहित होता है अथवा जहाँ तक इसे जाना है वहाँ तक जा सकता है। बीच में इसे कोई भी रोक नहीं सकता है। इस तरह से यह आहारक शरीर प्रमत्तसंयत नाम के छठवें गुणस्थान वाले मुनि महाराज को होता है।

लिंग (वेद) के स्वामी—

नारक—सम्मूर्छिनो नपुंसकानि।।50।।

अर्थ—नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक वेद (लिंग) वाले ही होते हैं।

इस सूत्र में आचार्य कहते हैं—कुछ जीवों के अन्दर भाव, वेद के अनुसार आते हैं उन वेदों का कथन यहाँ किया जा रहा है। आचार्य कहते हैं—नारकी जीव और सम्मूर्छन जीव नपुसंक वेद वाले होते हैं। तीन प्रकार के वेद होते हैं यह आपने पिछले सूत्रों में पढ़ा था। औदयिक भावों में तीन लिंगों के बारे में आपने पढ़ा था। पुरुष वेद, स्त्री वेद और नपुंसक वेद। इसको वेद भी कहते हैं और लिंग भी कहते हैं। इस अध्याय में इन दोनों ही शब्दों का उल्लेख किया गया है। प्रारम्भ में औदयिक भावों को बताने वाले जो सूत्र आए थे, उस सूत्र में भी लिंग शब्द का ही प्रयोग था। यहाँ पर भी 'नपुंसकानि' ऐसा इस लिंग के साथ ही कहा है। ये दोनों शब्द संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं और इन शब्दों के जो लिंग हैं वह भी अलग—अलग हैं। जैसे—लिंग शब्द जो होता है वह संस्कृत के अनुसार

नपुंसक लिंग का होता है और वेद होता है वह पुल्लिंग में प्रयोग होता है। यह बताया जा रहा है इस लिंग और वेद में अन्तर नहीं होते हुए भी इनका अलग–अलग प्रयोग क्यों किया गया ?यह एक चिन्तनीय विषय है। आचार्य कहते हैं नारकी जीव नपुंसक वेद वाले होते हैं और सम्मूर्छन जीव भी नपुंसक वेद वाले होते हैं। तात्पर्य यह है कि यह जीव न तो पुरुष वेद वाले होते हैं और न ही स्त्री वेद वाले होते हैं। इनका लिंग नपुंसक लिंग ही होता है। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि ये लिंग या वेद दो प्रकार से व्याख्यायित किये जाते हैं। एक द्रव्यलिंग कहा जाता है वह शरीर की अपेक्षा से कहा जाता है। शरीर में हमें जो अवयव जन्म से ही उपांगों के रूप में मिलते हैं उसे द्रव्यलिंग कहते हैं। जो पुरुष होगा उसे पुरुष के अवयव मिलेंगे और जो स्त्री होगी उसे स्त्री के अवयव मिलेंगे। यह सब गर्भ से ही निर्धारित हो जाता है।

इसी तरह से भावलिंग भी होता है जो हमारे भावों में चलता है। इन दोनों लिंगों के अलग–अलग कर्मों के उदय आगम में बताए गए हैं।

द्रव्यलिंग के लिए आचार्य कहते हैं कि शरीर नामकर्म के उदय के साथ–साथ स्त्रीलिंग सम्बन्धी अंगोपांग नामकर्म के जब उदय होते हैं तो स्त्री सम्बन्धी रचनाएं शरीर की बनती हैं। पुल्लिंग नामकर्म के उदय के होने पर पुरुष सम्बन्धी रचनाएं बनती हैं। एक नपुंसक भी होते है जिनके शरीर की रचना इन दोनों से भिन्न होती हैं। इस तरह से इन तीनों लिंगों की रचना अंगोपांग नामकर्म के उदय से और शरीर नामकर्म के उदय से होती है। भीतर जो भावलिंग चलता है वह वेदकर्म के उदय से चलता है। आपने पढ़ा होगा पच्चीस कषायों में सोलह कषायें होती हैं और नौ नौकषाय कहलाती हैं। उन नौकषायों में अन्त में तीन वेद आते हैं। वे तीन वेद एक प्रकार से काषायिक परिणति है। उन तीनों वेदों के उदय से उस–उस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। उसके लिए भी आचार्य ने लिखा है कि जिसके अंदर स्त्रीवेद का उदय होगा तो उसको पुरुष से रमण करने की इच्छा होगी और जिसके अंदर पुरुष वेद का उदय होगा उसे स्त्री से रमण करने की इच्छा होगी। जिसके अंदर नपुंसक वेद का उदय होगा उसको स्त्री और पुरुष दोनों से रमण करने की इच्छा होगी। ये नौ–कषायों के उदय से होने वाले वेद भाव भी जीवन पर्यंत तक रह सकते हैं और रहते हैं–ऐसा भी आचार्यों ने लिखा है। प्रत्येक कषाय अर्न्तमुहूर्त तक रहती है। क्रोध, मान, माया, लोभ इन कषायों का अवस्थान केवल अर्न्तमुहूर्त तक होता है। लेकिन वेद जीवन पर्यन्त तक रहते हैं। इसलिए श्री धवला पुस्तक में आचार्य श्री वीरसेन जी ने लिखा है कि वेद, कषायों की तरह अन्तमुहूर्त तक रहने वाले नहीं है। ये पूरे जीवन भर एक जैसे रह सकते हैं। इसके अनुसार जो भाव बनते हैं वे भाव यह निर्धारित करते हैं कि कैसा भाव हमारे अंदर वेद के रूप में आ रहा है। इसको भाववेद कहते हैं। इन भाववेद और द्रव्यवेद में विषमता भी देखने को मिलती हैं। इसको वेद वैषम्य कहते हैं। यह विषमता कैसी होती है?इस पर आचार्य कहते हैं कि ऊपर से कोई भी पुरुषवेदी हो तो भावों से वह

स्त्रीवेदी भी हो सकता है, पुरुषवेदी भी हो सकता है और नपुंसक वेदी भी हो सकता है। ऊपर से कोई स्त्रीवेदी हो तो भावों से वह पुरुष वेदी भी हो सकता है, स्त्रीवेदी भी हो सकता है और नपुंसकवेदी भी हो सकता है।

आचार्यों ने यह विषमता मनुष्य और तिर्यंचों में वेद–वैषम्य के रूप में कही है। कहने का तात्पर्य है कि द्रव्यलिंग के सापेक्ष कोई भावलिंगी भी हो ऐसा कोई जरूरी नहीं है। भावों से स्त्री सम्बन्धी परिणति हो सकती है और द्रव्य से लिंग पुरुष का हो सकता है। इसी तरह भावों से पुरुष सम्बन्धी परिणति हो द्रव्य से लिंग स्त्री का हो सकता हैं। इसी को आप नपुंसक के साथ भी घटित कर सकते हैं। इसीलिए सिद्धान्त–ग्रन्थों में जब गुणस्थानों का वर्णन आता है तो उन गुणस्थानों के वर्णन में द्रव्य से तो वह जीव पुरुष लिंग वाला ही होगा लेकिन भावों से श्रेणी चढ़ने वाले वे कोई भी वेद वाले हो सकते हैं। कहने का आशय है कि लिंग शब्द का जो सम्बन्ध होता है वह द्रव्य से भी है और औदयिक भावों में लिंग शब्द आया है तो वह भावों से भी है। जब इस लिंग शब्द का सम्बन्ध हम मोक्षमार्ग की अपेक्षा से देखते हैं तो आचार्य कहते हैं कि द्रव्यलिंग तो पुरुष का ही होना चाहिए। भावों से कोई भी लिंग होगा तो मोक्षमार्ग में कोई भी बाधा नहीं होगी। उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी के जो गुणस्थान होते हैं उनमें नौवें गुणस्थान में दो भाग हो जाते हैं। नौंवें ही गुणस्थान में एक ऐसी परिणति आ जाती है कि इन वेदों का अनुभव पूर्णतः समाप्त हो जाता है। वेद से रहित जब वह जीव हो जाता है तो उसे अवेदी जीव कहा जाता है। उस अवेद भाव होने के बाद ही दसवें आदि गुणस्थानों में चढ़कर केवलज्ञान आदि की प्राप्ति करता है। अभिप्राय यह है कि पुरुष वेद वाले के लिए मोक्ष होगा यह केवल द्रव्यलिंग की अपेक्षा से है। भावलिंग की अपेक्षा से तीनों वेद हो सकते हैं। मोक्षमार्ग में पुरुष वेदी होना यह अरिहन्त बनने की योग्यता बताई गई है। वह जीव अपने अंदर कषायों को, भावों को उपशम श्रेणी में, क्षपक श्रेणी में समाप्त कर लेता है। उदय के अभाव का वह वेदन करके, वह अवेद होकर उन अवेद भावों का वेदन करता है और तब वह इन तीनों ही वेदों से रहित हो जाता है। जब किसी जीव को मोक्ष मिलता है तो भावों की अपेक्षा से उसके पास कोई वेद नहीं होता है। द्रव्य की अपेक्षा से वह पुरुष वेद कहलाएगा लेकिन भावों की अपेक्षा से वेद रहित होकर ही उसको मोक्ष मिलेगा। इस तरह से यह आगम की व्यवस्था द्रव्य और भाव वेद दोनों के साथ चला करती है।

जो लोग इन द्रव्य और भाव वेद दोनों प्रकार की व्यवस्था को नहीं समझ पाते तो उनके लिए केवल यह कहने में आता है कि स्त्रियों को मोक्ष क्यों नहीं होता है?तो भावों की अपेक्षा से तो उन्हें मोक्ष होता है लेकिन द्रव्य की अपेक्षा से तो केवल पुरुष को ही मोक्ष होता है। द्रव्य की अपेक्षा से पुरुष वेद होना आवश्यक है। मोक्ष के लिए या केवलज्ञान के लिए पुरुष वेद की नियामकता क्यों है?इसके भी आचार्यों ने कारण बताए हैं। आचार्य कहते हैं संहनन के साथ में जो चित्त की स्थिरता होती है वह

पुरुष वेद के साथ सम्भव है स्त्रीवेद के साथ सम्भव नहीं है। स्त्रीवेद के उदय में जो भाव होते हैं, वे भी भाव बताए हैं और तीनों वेदों के उदय में होने वाले भावों का व्याख्यान भी आगम में पूर्ण रूप से मिलता है। इसलिए यह वेद वैषम्य जो होता है उसको ध्यान में रखते हुए ही इन सूत्रों को पढ़ना। यहाँ आचार्य जो कहते हैं कि नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक होते हैं उसके लिए दोनों वेदों पर अपनी दृष्टि ले जाना। ये द्रव्य से भी नपुंसक है और भावों से भी नपुंसक है। इस सूत्र में द्रव्य और भाव दोनों की अपेक्षा से ही कहा है। क्योंकि नरक पर्याय में तो निश्चित है जैसा द्रव्य वेद होगा वैसा ही भाव वेद होगा। नारकी जीव द्रव्य से भी नपुंसक होते हैं और भावों से भी नपुंसक होते हैं। ऐसे ही सम्मूर्छन जन्म लेने वाले जितने भी जीव होंगे वे भी द्रव्य और भाव दोनों से ही नपुंसक होते हैं।

हमें विचार करना चाहिए कि सम्मूर्छन जीव कौन–कौन से होते हैं?आपको पहले बताया गया था एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव सम्मूर्छन होते हैं। उनका एक नपुंसक वेद ही होता है।

जब आप साइंस पढ़ोगे तो आपको कुछ विषमताएं सुनने को मिलेगी। साइंस कहता है जितने भी मच्छर मक्खी आदि होते हैं उनके अंदर भी नर–मादा पाए जाते हैं। साइंस इनके अंदर भी दोनों प्रकार के वेद मानता है। साइंस नपुंसक वेद तो शायद मानता ही नहीं है। ये Contradiction विरोधाभास–पैदा हो जाता है इस साइंस से और जैन–साइंस से। इसे हम अपनी Jain Meta Physics कह सकते हैं। इस साइंस के अंतर की व्याख्या किस प्रकार से की जाये? साइंस कहता है–एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के सभी जीव दोनों प्रकार के वेद वाले हो सकते हैं। जबकि जैन–विज्ञान कहता है वे नपुंसक ही होंगे। इस समस्या का समाधान कैसे किया जाए?एक विचार हमारे मन में आता है उसे आपको बताता हूँ। नपुंसक जीवों के जो भाव होते हैं वे दोनों प्रकार के ही होते हैं–स्त्री से भी रमण करने के होते हैं और पुरुष से भी रमण करने के होते हैं। अगर हम इस भाव–परिणति को देखें तो हमें एक बात समझ में आती है कि नपुंसक वाले जीवों में भी इस प्रकार की परिणति सम्भव है कि स्त्री से रमण करने के भाव हो सकते हैं और किसी में पुरुष से रमण करने के भाव अधिक हो सकते हैं। अगर हम यहाँ अनेकान्त की उस मुख्य गौण विवक्षा को सामने ले आए तो साइंस और जैन साइंस में Corelation सामंजस्य हो सकता है। साइंस के अनुसार अगर यह कहा गया कि इसके अंदर पुरुष से रमण करने की इच्छा है या इसके अंदर स्त्री से रमण करने की इच्छा है तो वह उस नपुंसक वेद के मुख्यता और गौणता के भाव से आप लगा सकते हो। क्योंकि नपुंसक वेदी में दोनों ही प्रकार के वेद होंगे। दोनों प्रकार के भावों में से किसी जीव में स्त्री भाव की मुख्यता होगी और किसी में पुरुष भाव की मुख्यता होगी। लेकिन उन भावों की परिणति उनके अंदर मुख्य–गौण रूप से चल रही है और उसको देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह नर है या मादा है लेकिन उनके अंदर देखा जाए तो यह उनका नपुंसक वेद है। आप इस पर विचार कर सकते हैं। इस विचार के माध्यम से अगर हम देखेंगे तो आपको ऐसे जीवों की परिणति दिखाई देंगी जिनमें

नपुसंक लिंग ही होता है। अब द्रव्यलिंग में यह कैसे निश्चित किया जाए कि द्रव्यलिंग इसमें नर का है या मादा का है। इस बात को विज्ञान भी निश्चित नहीं कर पाता है। उनके अंदर के इन भावों की परिणामों की प्रक्रिया को देखकर ही विज्ञान इस चीज का निश्चय करता है कि ये नर हैं और ये मादा हैं। देखा जाए तो आचार्य कहते हैं ये सब नपुंसक लिंग वाले होते हैं। नपुंसक लिंग में बाहर से भी दोनों प्रकार की चीजें पाई जाएंगी। कुछ चिह्न उनके अंदर पुरुष वेदी होंगे और कुछ चिह्न उनमें स्त्री वेदी सम्बन्धित होंगे। इस प्रकार नपुंसक लिंग में बाहर से भी दोनों प्रकार की चीजों की सम्भावना हो गई और भावों के माध्यम से भी दोनों प्रकार के चीजों की सम्भावना हो जाती है। जीव तो नपुंसक है लेकिन उसके भाव की अपेक्षा से हमने उसे स्त्री भी कह दिया और पुरुष भी कह दिया। अगर ऐसे नर और मादा का विभाजन आज का साइंस करता है तो करे लेकिन जैन–साइंस कहता है वे सभी नपुंसक वेदी ही होते हैं। इसलिए चार इन्द्रिय मच्छर, मक्खी, पतंगे, भौंरे आदि जितने भी तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव हैं इन सभी जीवों में नपुंसक वेद ही होता है।

आगे के सूत्र में आचार्य महाराज कहते हैं–

न देवाः ।। 51 ।।

अर्थ–देव नपुंसक लिंग वाले नहीं होते हैं।

इस सूत्र का सम्बन्ध पूर्व सूत्र से जोड़ना चाहिए क्योंकि अगर आप इसी सूत्र का अर्थ करोगे तो इसका अर्थ होगा–'देव नहीं होते हैं।' इसलिए इस सूत्र का सम्बन्ध पहले सूत्र से है क्योंकि सूत्रों का आपस में सम्बन्ध होता है। यहाँ पर यह कहा जा रहा है कि देव नपुंसकलिंग वाले नहीं होते हैं क्योंकि पहले नपुंसक लिंग का वर्णन किया गया है। यहाँ पर यह नियामकता बनाई गई है कि देवों में नपुंसकलिंग नहीं होता है। जब इनमें नपुंसकलिंग नहीं है तो क्या बचा? जो बचा वह है–पुरुष लिंग और स्त्रीलिंग। अर्थात् देवों में दो ही प्रकार के लिंग मिलेंगे। वहाँ पर देव भी होंगे और देवियाँ भी होंगी। शास्त्रों के अनुसार देवियों की व्यवस्था केवल सोलह स्वर्ग तक ही होती है। उसके आगे देवियाँ नहीं होती हैं केवल देव ही देव रहते हैं। उन देवों का देवियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। सोलहवें स्वर्ग से ऊपर के देव अपने उस पुरुष वेद के साथ ही नियामक रूप से रहेंगे। इस व्यवस्था से आप यह भी समझ लेना कि जिसके अंदर पुरुष वेद का उदय है उसके लिए यह जरूरी नहीं है उसे स्त्री से रमण करने की इच्छा हो। या जिसमें स्त्रीवेद का उदय है उसे पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो। क्योंकि यह परिणति भावों पर निर्भर करती है और भावों में जैसे–जैसे कषायों की कमी होती चली जाती है लेश्याएं विशुद्ध होती चली जाती हैं। आपके अंदर ऐसे परिणाम उत्पन्न हो जाएंगे कि आपको किसी Opposite से सेक्स करने की इच्छा नहीं होगी। यह चीज देवों में भी घटित होती है। इसका सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका केवल अपनी लेश्या से सम्बन्ध हैं। आप इस विषय को समझकर अपने परिणामों को सही बनाने का प्रयास

कर सकते हैं। देवों में सोलहवें स्वर्ग से ऊपर के देव मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं। लेकिन वे नियम से शुक्ल लेश्या वाले होते हैं। लेश्याओं के परिणाम या कषायों की मंदता इतनी अधिक हो जाती है कि वहाँ उनको केवल शुक्ल लेश्या होती है। इसके कारण उन देवों में किसी भी रूप में देवियों को देखने के भी परिणाम नहीं होते हैं। उनसे रमण करने की इच्छा नहीं होती है। इसलिए सोलहवें स्वर्ग से ऊपर के देव बिल्कुल वीतरागी मुनि महाराज की तरह होते हैं। ये वेदों का परिणाम जो भावों के रूप में है उसको हम लेश्या परिणामों से सम्भाल सकते हैं। जो आज की एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। अगर हमारी लेश्याएं शुभ हो जाए तो हमारे अंदर वेद का जो आक्रामक रूप दिखाई देता है वह दिखाई नहीं देगा। ये लेश्या–परिणाम हमारी कषायों की मंदता पर निर्भर करते हैं। आपकी कषायें जैसे–जैसे मंद होगी आपकी लेश्याएं शुभ होती चली जाएगी। शुक्ल लेश्या वाला एकदम शान्त रहता हैं। आप इस चीज का प्रैक्टीकल भी कर सकते हैं। लेश्याओं को बदलना, भावों की परिणति को बदलना–आपके लिए सम्भव हो सकता है। यह भी जैन–दर्शन का बहुत बड़ा लेश्या–विज्ञान है। छः प्रकार के रंग हैं और उन छः प्रकार के रंगों के आधार पर ही अन्तरंग में लेश्याओं का परिणाम बताया गया है। जब शुभ लेश्या होगी तो पीत, पद्म और शुक्ल ये रंग होंगे अर्थात् भावों की स्वच्छता, निर्मलता बढ़ती चली जाएगी। शुक्ल लेश्या के परिणाम कषायों की मन्दता से कोई भी जीव कर सकता है। कृष्ण लेश्या वाले जीव भी शुक्ल लेश्या में आ सकते हैं। काले से सफेद परिणाम बनना इसी को कहते हैं।

आप देखोगे कई अजैन लोग ऐसे होते हैं जिनके परिणाम बहुत शान्त, उदासीन, निर्मल और पक्षपात से रहित होते हैं। ऐसे–ऐसे लोग होते हैं जिन्हें धर्म का भी कोई पक्षपात नहीं होता है। उनके अंदर सभी प्राणियों के प्रति समता का भाव रहेगा। ऐसे परिणामों का अर्थ है–शुक्ल लेश्या के परिणामों के निकट आ जाना। यह परिणाम मिथ्यादृष्टि–जीव भी अपनी कषायों को मंद करके अपने अंदर ला सकता है। इन शान्त परिणतियों के परिणाम ये होते हैं कि उसके अंदर किसी भी प्रकार का उद्वेग नहीं होगा और आप जैन होकर भी यदि अपने परिणामों को नहीं संभालेंगे तो आप जैन होकर भी उद्वेग भावों में बने रहेंगे। 'ये मिथ्यादृष्टि है, ये सम्यग्दृष्टि है,' केवल इसी में लड़ते रहेंगे। आपस में लड़ते रहेंगे, एक दूसरे के लिए कषाय पैदा करते रहेंगे। अपनी भी लेश्या खराब करेंगे और दूसरे की भी लेश्या खराब करेंगे। उससे जो भी हानि होगी उसका परिणाम स्वयं को भी भोगना पड़ेगा और दूसरे को भी भोगना पड़ेगा।

इन लेश्याओं की शुभता से भी हमारे आभामण्डल में बहुत अधिक शुभता आ जाती है। यही शुभता बढ़ते–बढ़ते कषायों की मंदता होने पर मिथ्यात्व परिणामों की भी मंदता होती है और वह सम्यग्दर्शन की उपलब्धि कराती है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवों को इन कषायों की मंदता पर ध्यान देना चाहिए।

आज कई लोगों की यह समस्या है कि हम अपने अंदर इन Sexual परिणामों को कैसे रोके?जो Opposite Sex के प्रति उत्पन्न होते रहते हैं। जो इनको नहीं रोक पाते है वे इनसे परेशान

रहते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि आप अपनी उन लेश्याओं के परिणामों को बदले। आप अपने मन को शुक्ललेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या से अपने मन को बार–बार भिगोंए। आपका मन जब उन परिणामों में ढल जाएगा तो आपके परिणाम बिल्कुल शान्त होने लगेंगे। आपके अन्दर किसी भी वेद का कोई उद्वेग नहीं होगा। आप अपने अंदर समता के भाव का अनुभव कर सकेंगे। यह इसका मनोविज्ञान हैं। इस तरह से इस सूत्र में यह कहते हैं कि जो देव होते हैं वे नपुंसक लिंग वाले नहीं होते हैं। वे केवल पुरुष वेद या स्त्री वेद वाले होते हैं। यह सीमा भी स्वर्गों में सोलहवें स्वर्ग तक है। उसके बाद नौ ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तरों में पुरुष वेद ही होता है। उनमें पुरुष वेद होते हुए भी अन्य वेद से रमण करने का भाव नहीं होता है। इसलिए आप एकान्त से यह मत समझना कि देव असंयमी ही होते हैं। देव देवियों के साथ मनोरंजन करने में ही लगे रहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है जैसा देवों में पुरुष वेद होता है वैसे ही उनके भावों में होता है। उनमें वेद–वैषम्य नहीं होता है कि द्रव्य से कुछ हो और भावों से कुछ और हो। यहाँ पर जो यह सूत्र 'न देवाः' आया है वह ऊपर वाले सूत्र 'नपुंसकानि' उस लिंग की अपेक्षा से कहा गया है। अर्थात् लिंग शब्द, द्रव्य और भाव इन दोनों वेदों की समानता को बताता है ऐसा फलित होता है। यह चिंतन आचार्य द्वारा दिया गया है। लिंग और वेद में यहाँ क्या अन्तर है?लिंग कहने से तो द्रव्य और भाव दोनों समानता की ओर जा रहे हें और वेद कहने से विषमता भी सम्भव है।

क्योंकि आगे के सूत्र में बताया जा रहा है–

शेषास्त्रिवेदाः ।। 52 ।।

अर्थ–शेष बचे जीव (गर्भज मनुष्य और तिर्यंच) तीनों वेद वाले होते हैं।

आचार्य जी ने यहाँ पर वेद शब्द का प्रयोग किया और ऊपर लिंग शब्द का प्रयोग किया ऐसा क्यों?यहाँ पर भी ऐसा कह सकते थे कि "शेषास्त्रिलिंगानि" शेष तीन लिंग वाले होते हैं। लेकिन इस सूत्र में वेद शब्द का प्रयोग किया, ऐसा क्यों?क्योंकि जो बचे उनमें वेद–वैषम्य सम्भव है। अर्थात् बाहर से कुछ हो सकता है और भीतर से कुछ और हो सकता है। द्रव्य की अपेक्षा से पुरुष हो सकता है और भावों की अपेक्षा से स्त्री हो सकता है। शेष बचे जीव अर्थात् गर्भज, मनुष्य और तिर्यंच–ये तीनों वेद वाले हो सकते हैं। इनमें सम्मूर्छन जन्म वालों को छोड़ दो, देवों को छोड़ दो नारकियों को छोड़ दो। उसके बाद में जितने भी जीव बचे वे सभी तीनों वेद वाले हो सकते हैं। गर्भज में भी जरायुज, अण्डज और पोत जन्म वाले जीव में वेद–वैषम्य हो सकता है।

अन्तिम सूत्र में आचार्य बताते हैं कौन–कौन से जीव पूरी आयु भोगकर ही मरण करते हैं?

औपपादिक–चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय–वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।। 53 ।।

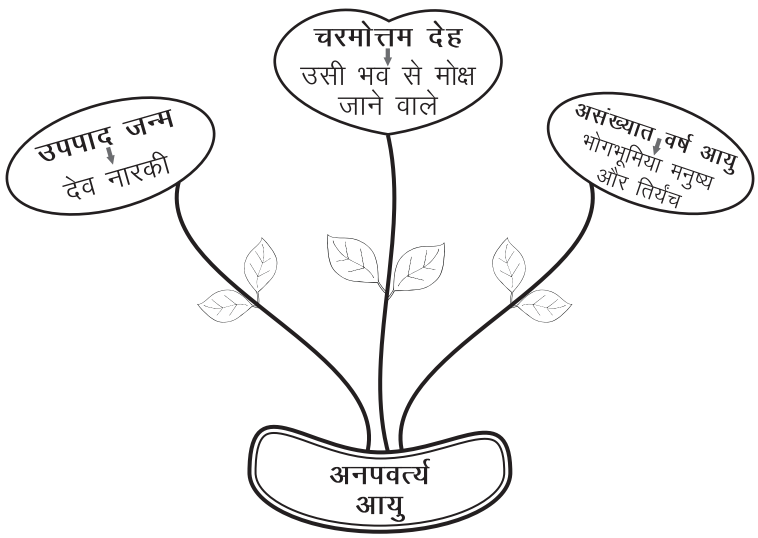

अर्थ–औपपादिक अर्थात् उपपाद जन्म वाले देव और नारकी, चरमोत्तमदेह अर्थात् उसी शरीर से मोक्ष जाने वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले–भोगभूमियों के जीव पूरी आयु भोग कर ही शरीर छोड़ते हैं। शस्त्र आदि से इनकी आयु नहीं छिदती। इनके अतिरिक्त अन्य जीवों की आयु का कोई नियम नहीं है।

आचार्य मरण के विषय में बता रहे हैं–किन जीवों के किस तरह के मरण होते हैं? आचार्य कहते हैं–मरण दो प्रकार का होता है। एक सकाल मरण और दूसरा अकाल मरण। शास्त्रीय भाषा में अकाल मरण को अपवर्त्य आयु वाला कहा जाता है। जिसका सकाल मरण होता है उसे अनपवर्त्य आयु वाला कहा जाता है।

ऐसे कौन से जीव होते हैं जिनका अकाल मरण नहीं होता है?उनको इस सूत्र में दिया है। इनके अतिरिक्त जितने भी जीव बचेंगे उनका अकाल मरण सम्भव होगा। यह अर्थ इसी सूत्र से निकलकर आ जाएगा। कुछ लोग सोचते हैं कि मनुष्यों और तिर्यंचों का सकाल मरण होता है और मानते हैं कि कभी अकाल मरण नहीं होता है, जो लोग ऐसा बोलते हैं वे इन सूत्रों को झुठला रहे हैं। आचार्य कहते हैं–उपपाद जन्म वाले जीवों की अनपवर्त्य आयु होती है। जितनी आयु मिली है उतनी आयु को भोगकर मरण होना, इसे सकाल मरण कहते हैं। ये कौन से जीव होंगे?तो देव और नारकी उपपाद जन्म वाले होते हैं।

आगे कहते हैं–चरम देह वाले और उत्तम देह वालों का सकाल मरण होता है। चरमशरीरी वालों को अन्तिम शरीरी भी कहा जाता है। अर्थात् जिस शरीर से उन्हें नियम से मोक्ष होना है उसे चरमशरीरी कहते हैं। उत्तम देह वाले उन्हें कहते हें जो त्रेसठ शलाका पुरुषों में आते हैं। इस तरह से जिनका चरम शरीर भी होगा और उत्तम देह भी होगी उन्हीं का सकल मरण होता है। ऐसे भी जीव होते हैं जो चरम शरीरी तो होते हैं लेकिन उत्तम देह वाले नहीं होते हैं। जैसे–पाण्डव चरमशरीरी तो थे लेकिन उत्तम देह वाले नहीं थे। क्योंकि वे त्रेसठ शलाका पुरुषों में नहीं आते थे। ऐसे अनेक और भी हुए है तो जिनके लिए कहा जाएगा कि उनका अकाल मरण भी सम्भव हैं यह नियम तीन पाण्डवों में भी संगत होगा। उत्तम देह वाले भी ऐसे होते हैं जिनकी देह तो उत्तम होती है लेकिन चरम शरीरी नहीं होते हैं। इस तरह इनका भी अकाल मरण सम्भव है। जो जीव चरम शरीरी भी हों और उत्तम देह वाले भी हों उनका अकाल मरण नहीं होता है। जिनकी गिनती त्रेसठ शलाका पुरुषों में भी होती हो और जो चरम शरीरी भी हो उन्हें अकाल मरण से रहित जीव कहा जाएगा। यहाँ यह नियम तीर्थंकरों का बनता है क्योंकि तीर्थंकर त्रेसठ शलाका पुरुषों में भी आते हैं और चरम शरीरी भी होते हैं। वे भी अनपवर्त्य आयु वाले होंगे और अकाल मरण से रहित होंगे।

तीसरा विशेषण आता है जिनकी आयु **असंख्यात वर्ष** की है उनका सकाल मरण होता है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले कौन होते हैं?आचार्य कहते हैं जिनकी आयु एक, दो, तीन पल्य की अर्थात् असंख्यात वर्ष की होती है वे भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। इन सभी के बाद जो भी मनुष्य और तिर्यंच बचे उनका अकाल मरण सम्भव है। ऐसा नियम नहीं है कि अकाल मरण ही होगा लेकिन अकाल मरण के कारण मिलेंगे तो आपका अकाल मरण हो जाएगा। आपका सकाल मरण ही हो ऐसा भी कोई नियामक नहीं हैं। इसलिए जिन जीवों की अचानक दुर्घटना हो जाती है उन दुर्घटनाओं के कारण जिनका मरण हो जाता है उन्हें अकाल मरण से मरा हुआ मानना चाहिए। जिन जीवों का एक्सीडेंट हो जाता है ऐसे स्थानों पर चोट लग जाती है जहाँ से रक्त रूकता नहीं है। उनका भी अकाल मरण मानना चाहिए।

आचार्य कुंदकुंद देव ने भावपाहुड़ की गाथा में कहा है– "रक्त के क्षय से भी अकाल मरण हो जाता है।" फिर उन्होंने लिखा है वेदना। ऐसी तीव्र वेदना हो जाए जिसके कारण आपको मरना पड़ जाए, वह भी आपका तीव्र वेदना से अकाल मरण कहलाएगा। श्वास को रोक देने से तथा गला घोंट देने से भी अकाल मरण सम्भव है। अतिसंक्लेश परिणामों से भी आपका अकाल मरण हो सकता है। कई बार कर्ज बढ़ जाने आदि से Depression में आ जाने पर भी अकाल मरण हो जाता है। ये सभी

कारण उसमें दिए गए हैं। इसलिए हमें कभी भी अन्यथा बातों में नहीं आना है कि वर्तमान में अकाल मरण नहीं होता है। यह सिद्धान्त जो बताया जाता है कि कोई भी जीव है वह अपनी आयु पूर्ण करके मरेगा क्योंकि अगली आयु तो उसके पास रहती नहीं है। पिछले जन्म की आयु अगली आयु में रहेगी नहीं तो उसका सिद्धान्त यह है कि जो मरण हमारा आगे होना था उसको हमने पहले ही कर दिया। आयु के सभी निषेकों का क्षय शीघ्रता से एक साथ हो जायेगा और वह आयु समय से पहले क्षय हो जाएगी। उसका नाम अकाल मरण है।

जैसे आपने कोई दीपक जलाया उसमें तेल डालकर रखा। अगर वह तेल अपने समय से जलता तो वह पूरी रात भर जल सकता था, यह हो गया उसका सकाल आयु का क्षय क्योंकि तेल का उपयोग सकाल रूप में हो रहा है। अगर आपने उसमें कोई छेद कर दिया या उसको तोड़ दिया तो वह तेल एक साथ जलकर समाप्त हो जाएगा तो यह कहलाएगा उसका अकाल क्षय। क्योंकि तेल तो पूरा जल गया लेकिन वह समय से पहले जल गया। इसी तरह से आयु जब कभी घात को प्राप्त होगी तो एकदम से तेल की तरह जल जाएगी। अगले जन्म में पिछले जन्म की आयु साथ नहीं जाएगी। वह उसी जन्म में पूरी समाप्त हो जाएगी। यह स्थिति अकाल मरण की कहलाएगी। इनमें से ऐसे कारण नहीं बनते हैं तो वह पूर्ण आयु को भोगकर सकाल मरण को प्राप्त होगा। इस तरह मरण में आयु का क्षय होना तो निश्चित होता है। आयु के क्षय होने के दो तरीके होते हैं—एक समय पर घात हो जाना और दूसरा समय से पहले घात हो जाना।

अतः आपको समझना चाहिए कि मनुष्य और तिर्यंचों में दोनों प्रकार की ही सम्भावना होती है। क्योंकि अकाल मरण किसका नहीं होता है उन्हीं के लिए यह सूत्र बनाया गया है। इसलिए हमें अकाल मरण से बचना चाहिए। आप ऐसा नहीं करना कि ट्रेन की पटरी पर जाकर लेट जाएं और सोचे यदि आयु होगी तो बच जाएंगे और नहीं होगी तो मर जाएंगे। आप इस अज्ञानता में इन सूत्रों को पढ़ने के बाद मत रहना। इस तरह यह अध्याय यहीं समाप्त होता है।

शंका— सल्लेखना में कौन—सा मरण होता है?

समाधान—यदि दो या चार घंटे का कोई फर्क पड़ जाएं तो कोई बात नहीं है। सल्लेखना में सकाल मरण भी होता है। अगर वह सल्लेखना सही ढंग से की गई हो सहजता में की गई हो और यदि थोड़ी बहुत आयु की हीनाधिकता हो जाती है तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। दो चार घंटे या एक या दो दिन का अन्तर भी आता है तो उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि हम मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले हैं। सल्लेखना एक बहुत बड़ा काम होता है।

शंका– क्या अकाल मरण होता है?

समाधान– अपने शरीर का घात हो जाने पर जो आत्मा उस शरीर में रहती है उसे रहने के लिए स्थान नहीं मिलता। क्योंकि आत्मा बिना शरीर के रह नहीं सकती वह अपनी आयु को पूर्ण करके चली जाती है इसलिए अकालमरण हो जाता है। इसलिए यह भी कह सकते हैं नौकर्म का घात होने पर अकाल मरण हो जाता है।

शंका– क्या भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों में भी नपुंसक वेद होता है?

समाधान–वहाँ की व्यवस्थाएँ अलग–अलग हैं। वहाँ मनुष्य और तिर्यंच युगल ही पैदा होते हैं, और एक साथ ही मरण को प्राप्त होते हैं। वहाँ पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी दो ही प्रकार के जीव होते हैं।

शंका– क्या अकाल मरण में पूर्व कर्म का भी योग होता है?

समाधान– हाँ ! अकाल मरण में पूर्व कर्म का भी योग हो सकता है। हो सकता है आपने पूर्व जन्म में किसी जीव का घात किया हो अब वही आपके लिए घात का कारण बन सकता है। पूर्व जन्म के कर्म भी आपके लिए सम्भव है जिसके कारण आपको ऐसे निमित्त मिल सकते हैं जिससे आपके शरीर का घात हो और आपकी अकाल मृत्यु हो जाए।

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी के चरणों में शत्–शत्

वंदन